पृष्ठ

श्रीराम

अलंकारमंजूषा

(पहला पटल)

अलंकार

किसी वाक्य के वर्णन करने का 'चमत्कारिक' ढंग 'अलंकार' कहलाता है। दूसरे शब्दों में यों कहिये कि "जिस सामग्री से किसी वाक्य में रोचकता वा चमत्कार आजाय वह सामग्री 'अलंकार' कहलाती है"

जैसे गहने पहनने से किसी व्यक्ति का शरीर कुछ अधिक रोचक देख पड़ता है, वैसे ही अलंकार से वाक्य की रोचकता बढ़ जाती है। 'अलंकार' काव्य का एक आवश्यक अंग है। ऐसा तो नहीं कहा जा सकता कि बिना अलंकार के कबिता बनही नहीं सकती, पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि अलंकार से कबिता की मनोहरता बहुत अधिक बढ़ जाती है।

मुख्य अलंकार तीन प्रकार के होते हैं-(१) शब्दालंकार (२) अर्थालंकार और (३) उभयालंकार।

(१) जहा शब्दों में चमत्कार पाया जाय वहां शब्दालंकार कहा जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि यदि उन शब्दों को बदलकर उनके स्थान में उनके पर्यायवाची शब्द रख दिये जायें तो वह चमत्कार न रहैगा।

(२) जहाँ अर्थ में चमत्कार पाया जाय वहाँ 'अर्थालंकार' माना जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि वह चमत्कार निकाल कर यदि उस वाक्य का केवल तात्पर्य कहा जाय तो वह वाक्य बिल्कुल सादा और अरोचक हो जायगा। जैसे कहना यह है कि "अमुक व्यक्ति बड़ा विद्वान् है", तो इस वाक्य को सीधे यों न कहके कि "अमुक व्यक्ति बड़ा विद्वान् है," यों कहें कि (क) अमुक व्यक्ति दूसरा बृहस्पति है, (ख) अमुक व्यक्ति की विद्वत्ता से लज्जित होकर बृहस्पति पीले हो गये हैं, (ग) अमुक व्यक्ति बृहस्पति के समान है, (घ) अमुक व्यक्ति की विद्वत्ता से हारकर बृहस्पति दिन में अपना मुंह नहीं दिखलाते, (ङ) अमुक व्यक्ति मनुष्य नहीं बृहस्पति है इत्यादि, तो इस प्रकार के कथनों में कुछ विशेष चमत्कार आजाता है। इसी चमत्कार को अर्थालंकार कहते हैं। यह अलंकार अर्थ पर निर्भर रहता है। इसलिये इसके शब्द पर्याय-वाची शब्दों से बदल दिये जा सकते हैं।

(३) ऊपर कहे हुए अलंकारों में से किसी प्रकार के एक से अधिक अलंकारों के सम्मेलन को 'उभयालंकार' कहते हैं, परन्तु उसमें नियम यह है कि जिस अलंकार की मुख्यता समझी जायगी वही अलंकार मान लिया जायगा।

शब्दालंकार

नीचे लिखे हुए मुख्य १० शब्दालंकार सर्वमान्य हैं:—(१) अनुप्रास (२) चित्र (३) पुनरुक्ति-प्रकाश (४) पुनरुक्ति-वदाभास (५) प्रहेलिका (६) भाषा-समक (७) यमक (८) वक्रोक्ति (९) विप्सा और (१०) श्लेष।

(१)–अनुप्रास*

दो०–व्यंजन सम वरु स्वर असम अनुप्रासऽलंकार।
छेक, वृत्ति, श्रुति, लाट अरु अन्त्य पांच विस्तार॥

विवरण–जहाँ व्यंजनों की समानता हो चाहे उनके स्वर मिलें वा न मिलें, उसे अनुप्रास अलंकार कहते हैं। इसके ५ भेद हैं–(१) छेक (२) वृत्ति (३) श्रुति (४) लाट और (५) अन्त्य।

(१) छेकानुप्रास

दो०–वर्ण अनेक कि एक की आवृति एकै बार।
सो छेकानुप्रास है आदि अन्त निरधार॥

विवरण–जहाँ एक अक्षर की वा अनेक अक्षरों की आवृत्ति केवल एक बार हो, चाहे वह आदि में हो चाहे अन्त में। जैसे

उ० राधा के वर बैन सुनि चीनी चकित सुभाय।
दाख दुखी मिसरी मुरी, सुधा रही सकुचाय॥

यहां 'वर' और 'बैन' में 'ब' की 'चीनी' और 'चकित' में 'च' की, 'दाख' औ 'दुखी' में 'द' की, मिसरी और मुरी में 'म' की, और 'सुधा' और 'सकुचाय, में 'स' का आवृत्ति शब्दों के आदि में हुई है।

दो० जन रंजन भंजन दनुज, मनुज रूप सुरभूप।
विश्वबदर इव धृत उदर जोवत सोवत सूप॥

---

* (नोट)–फारसी, अरबी, तथा उर्दू में अनुप्रास, और यमक अलंकारों को "तजनीस" कहते हैं। हिन्दी की तरह इन भाषाओं में भी इन अलंकारों के अनेक भेद हैं।

इस उदाहरण के रंजन और भंजन में, दनुज और मनुज में, बदर और उदर में जीवत और सोवत के अंत में दो दो अक्षरों की आवृत्ति एक बार है। रूप और भूप में अंत में एक अक्षर की आवृत्ति है। विश्व और बदर में सोवत और सूप में आदि में एक एक अक्षर की आवृत्ति है।

(कवित्त)–बाँधे द्वार का करी, चतुर चित्त काक री, सो उम्मिर वृथा करी न राम की कथा करी। पाप को पिनाक री, न जाने नाक नाकरी, सु हारिल की नाकरी, निरंतर ही ना करी। ऐसी सूमता करी, न कोऊ समता करी, सु बेनी कविता करी प्रकाश तासु का करी। देव अरचा करी न ज्ञान चरचा करी न दीन पै दया करी न बाप की गया करी॥

विवरण–इसमें 'का करी' और 'काकरी' में तीन अक्षरों की आवृत्ति 'वृथा' और 'कथा' में 'थ' की आवृत्ति, सूमता और समता में तीन अक्षरों की आवृत्ति अरचा और चरचा में दो की आवृत्ति, दया और गया में एक अक्षर की आवृत्ति अंत में है। चतुर और चित्त में 'च' 'त' की आवृत्ति आदि में है। दीन और दया में 'द' की आवृत्ति आदि में है।

(२)—वृत्यनुप्रास

दो०–वर्ण अनेक कि एक की जहँ सरि कैयो बार।
सो है वृत्यनुप्रास जो परै वृत्ति अनुसार॥

बिवरण–छेकानुप्रास की तरह आदि वा अंत में एक वर्ण की वा अनेक वर्णों की समता वृत्तियों के अनुकूल कई बार पड़े उसे वृत्यनुप्रास कहेंगे।

सूचना–इस अलंकार को समझने के लिये पहले यह समझ लेना चाहिये कि हिन्दी कविता में वृत्तियाँ तीन हैं–(१) उपनागरिका। (२) परुषा और (३) कोमला। इन्हीं तीनों के अन्य नाम क्रम से वैदर्भी, गौड़ी और पाँचाली भी हैं।

(१) माधुर्यगुण सूचक वर्ण अर्थात् टवर्ग को छोड़ कर शेष मधुरवर्ण और सानुनासिक वर्ण जिस कविता में हों उसे 'उपनागरिका' वृत्ति कहते हैं (२) टवर्ग, द्वित्तवर्ण, रेफ और श, ष इत्यादि वर्ण और लंबे समास तथा संयुक्त वर्ण जिसमें अधिक हों उसे 'परुषा' वृत्ति और (३) य, र, ल, व, स, ह और छोटे समास वा समासरहित शब्द जिसमें अधिक हों उसे 'कोमला' वृत्ति कहते हैं। शृङ्गार, करुणा और हास्य रस की कविता उपनागरिका में, रौद्र, वीर, और भयानक रस की कविता परुषा में और शांत, अद्भुत और बीभत्स रस की कविता कोमला वृत्ति में अच्छी लगती है।

(उपनागरिका के अनुकूल)

उ०-धर्म धुरीणधीरनयनागर। सत्य सनेह सीलसुखसागर
बिरति बिवेक बिनय बिज्ञाना। बोध यथारथ वेद पुराना॥

पुनः-रघुनंद आनँदकंद कौसलचंद दसरथनंदनं।

पुनः-भनत मुरार देश देशन में कीर्ति गाई ऐसी चपलाई
कहौ छाई है कवन में। नट में न नारि में न नय में न
नैनन में मृग में न मारुत में मीन में न मन में।

पुनः-सोइ जानकी पति मधुर मूरति मोदमय मंगलमई।

पुनः-देववंदिनी के निमिवंशचंदिनी के युग
नीके पदकंज मिथिलेशनंदिनी के हैं।

पुनः दो०-लोपे कोपे इन्द्र लौं रोपे प्रलय अकाल।
गिरधारी राखे सबै गो गोपी गोपाल॥

(परुषा वृत्ति के अनुकूल)

दो०—चक्क वक्क करि पुच्छ करि रुष्ट ऋच्छ कपिगुच्छ।
सुभट ठट्ट घन घट्ट सम मर्दहिं रच्छन तुच्छ॥

कबित्त–बारि टारि डारौं कुंभकर्णहिं बिदारिडारों, मारौं मेघनादै आजु यों बल अनन्त हौं। कहै पदमाकर त्रिकूट हू को ढाहि डारौं, डारत करेई जातुधानन को अंत हौं। अच्छहिं निरच्छ कपि रुच्छ है उचारों इमि तोम तिच्छ तुच्छन को कुछवै न गंत हौं। जारि डारो लंकहिं उजारि डारों उपवन फारि डारो रावण को तो मैं हनुमंत हौं।

छप्पय–मुंड कटत कहुं रुंड नटत कहुँ सुंड पटत घन।
गिद्ध लसत कहुँ सिद्ध हँसत सुख वृद्धि रसत मन॥
भूत फिरत करि बूत भिरत सुर दूत बिरत तहँ।
चंडि नचत मन मंडि रचत धुनि डंडि मचत जहं
इमि ठानि घोर घमसान अति भूषण तेज कियो अटल।
सिवराज साहिसुव खग्ग बल दलि अडोल बहलोलदल॥

पुनः–क्रुद्ध फिरत अति युद्ध जुरत नहिं रुद्ध मुरत भट।
खग्ग बजत अरि बग्ग तजत सिर पग्ग सजत चट॥
ढुक्कि फिरत मद झुक्कि भिरत करि कुक्कि गिरत गनि।
रंग रकत हर संग छकत चतुरंग थकत भनि॥
इमि करि संगर अति ही विषम भूषन सुजस कियो अचल
सिवराज सुसाहिब खग्ग बल दलि अडोल वहलोल दल॥

पुनः–खग काक कंक श्रृगाल। कटकटहिं कठिन कराल॥

(कोमला वृत्ति के अनुकूल)

जैसे—सत्य अनेह सील सुखसागर।

दो०—स्यामल गौर किशोर बर सुन्दर सुखमाऐन।

कवित्त–ख्याल ही की खोल में अखिल ख्याल खेल खेल गाफिल है भूलो दुख दोष की खुस्याली तैं। लाख लाख भांति

अभिलाष लखे खाल अरु अलख लख्यौ न लखी लालन की लाली तैं ॥ हरि हर 'देव' प्रभु सों न पल पाली प्रीति दै दै करताली न रिझायो बनमाली तैं ॥ झूठी झिलमिल की झलक ही मैं भूलौ जल मल की पखाल खल खाली खाल पाली तैं ॥

बावन से रावन से रामजू सों खेलि खेलि खलनि की खालनि खिलौना ज्यौं खिलाइगे । काटे काल व्याल ऐसे बली बलभद्र ऐसे बली ऐसे बालि से बबूला से बिलाइगे ॥

इन उदाहरणों में र, ख, और ल, की अनेक आवृत्तियाँ हैं ।

नोट—छेक और वृत्ति अनुप्रासों को अंगरेज़ी में Alliteration कहते हैं। नीचे लिखा हुआ उदाहरण शेक्सपियर ने लार्ड ऊलज़ी को लक्ष्य करके बहुत अच्छा लिखा है ।

Begot by butcher, by bishop bred.
How high His Highness holds his haughty head.

पुनः—जप माला छापा तिलक सरै न एको काम ।
मन काँचै नाँचै बृथा साँचै राँचै राम ॥

(३)- श्रुत्यनुप्रास

जहाँ तालु कंठादि की व्यञ्जन समता होय ।
सोई श्रुत्यनुप्रास है कहत सुघर कबिलोग ॥

बिवरण—जहाँ तालु कंठादि स्थानों से उच्चरित होनेवाले व्यञ्जनों की अर्थात् एक स्थान से उच्चरित होनेवाले वर्णों की समता हो उसे श्रुत्यनुप्रास कहते हैं ।

स्मरण रहना चाहिये किः—

(१) अ. आ, क, ख, ग, घ, ङ, ह और (:) विसर्ग का उच्चारण कंठ से होता है ।

(२) इ, ई, च, छ, ज, झ, ञ और श का उच्चारण तालु से होता है ।

(३) ऋ, ॠ, ट, ठ, ड, ढ, ण, र, ष का मूर्द्धा से होता है।
(४) लृ, त, थ, द, ध, न, ल और स का दाँतों से होता है
(५) उ, ऊ, प, फ, ब, भ, म, का उच्चारण होठों से होता है
(६) ए, ऐ का उच्चारण कंठ और तालु से होता है।
(७) ओ और औ का उच्चारण कंठ और होंठ से।
(८) व का दाँत और होंठ से।
(९) पंचम वर्ण और अनुस्वार का नासिका से।

सूचना–इस विचार से जब कविता में ऐसे शब्द रक्खे जाते हैं जो एक स्थानीय उच्चारणवाले अक्षरों से बने हों तो उस कविता में एक प्रकार की धारा प्रवाहिनी शक्ति और मधुरता आ जाती है और उसका सुनना कानों को प्रिय लगता है। इसके विरुद्ध टवर्ग वाले शब्द कानों में खटकते हैं जैसे-

तुलसिदास सीदत निसिदिन देखत तुम्हारि निठुराई।

इसमें अधिकतर दंती अक्षर आये हैं, इससे यह पद बहुत मीठा जान पड़ता है। और "पर क्या न विषयोत्कृष्टता करती विचारोत्कृष्टता" इस रचना में शब्दों का संगठन वैसा नहीं है इसलिये कानों को कटु जान पड़ता है। इसी तरह और भी समझ लो। तुलसी और पद्माकर की कविता में यह गुण अधिक है।

(४)–लाटानुप्रास

दो०–शब्द अर्थ एकै रहै, अन्वय करतहिं भेद।
सो लाटानुप्रास है भाषत सुकवि अखेद॥

बिबरण–(पहले कहे हुए अनुप्रास अक्षरों के अनुप्रास हैं। पर लाटानुप्रास शब्द का अनुप्रास है) शब्द और उसका अर्थ वही रहै, केवल अन्वय करने से अर्थ में भेद हो जाय

उसे लाटानुप्रास कहते हैं। यह अनुप्रास 'लाट' देशवाले कवियों का निकाला हुआ है। इसी से इसका यह नाम पड़ा है।

उदाहरण

दोहा—तीरथ व्रतसाधन कहा, जो निस दिन हरि गान।
तीरथ व्रत साधन कहा, बिन निस दिन हरि गान॥

यहाँ शब्द और अर्थ दोनों की आवृत्ति है, केवल तात्पर्य में भेद है। अर्थात् जो मनुष्य रात दिन हरियश गान करता रहै तो उसके लिये तीर्थ, व्रत और साधन आवश्यक नहीं हैं। जिस तीर्थ व्रत और साधन में रात दिन हरियश गान का विधान न हो वह तीर्थ, व्रत और साधन व्यर्थ है।

दो०—राम हृदय जाके बसे विपति सुमंगल ताहि।
राम हृदय जाके नहीं, विपति सुमंगल ताहि॥

जिसके हृदय में राम बसते हैं उसके लिये विपत्ति भी सुमङ्गल हो जाती है। और जिसके हृदय में राम नहीं हैं उसके लिये सुमंगल भी विपत्ति ही है।

दो०—औरन को जाँचे कहा, नहिं जाँच्यो शिवराज ?
औरन के जाँचे कहा, जो जाँच्यो शिवराज ? ॥

कभी कभी कोई एक शब्द अन्य शब्दों के साथ समास द्वारा मिल जाता है—जैसे

तुरमुती तहखाने गीदर गुसुलखाने सूकर सिलहखाने कूकत करीस हैं। हिरन हरमखाने स्याही हैं सुतुरखाने पाढ़े पीलखाने औ करंजखाने कीस हैं। भूषन सिवाजी गाजी खग्ग सों खपाये खल खानखाने खलन के खेरे भये खीस हैं। खड़गी खजाने खरगोस खिलवतखाने खीसें खोले खसखाने खाँसत ख़बीस हैं।

इस कवित्त में भूषन ने सब प्रकार के अनुप्रास एकत्र

दिखलाये हैं। तहखाने, गुसुलखाने, सिलहखाने, हरमखाने, सुतुरखाने, पीलखाने, करंजखाने, खिलवतखाने और खसखाने इत्यादि शब्दों में 'खाने' शब्द का अर्थ सब जगह एक ही है, परन्तु भिन्न भिन्न २ शब्दों के साथ समास होने से उन शब्दों के अर्थ भिन्न २ हो जाने से लाटानुप्रास है।

तुरमुती तहखाने, गीदर गुसुलखाने, सूकर सिलहखाने हिरन हरमखाने, स्याही हैं सुतुरखाने, पाढ़े पीलखाने, करंज खाने कीस हैं खरगोस खिलवतखाने इत्यादि शब्दों में छेकानुप्रास है।

अंतिम दोनों चरणों में 'ख' की आवृत्ति अनेक बार होने से वृत्यनुप्रास है। पुनः,

दो०—मुधा तीर्थ को भ्रमण है, रहैं हरी चित जासु।
मुधा तीर्थ को भ्रमण है, रहैं न हरि चित जासु॥

(५)——अन्त्यनुप्रास

दो०—व्यंजन स्वर युत एक से जो तुकान्त में होहि।
सो अन्त्यानुप्रास है; अरु तुकान्त हू ओहि॥

विवरण—प्रत्येक छंद में चार चरण होते हैं। चारो चरणों के अन्त्याक्षर 'तुकान्त' कहलाते हैं। इसी तुकान्त को अन्त्यनुप्रास कहते हैं। भाषा काव्य में तुकान्त बहुत अच्छा लगता है। इसी को फारसी तथा उर्दू में काफिया कहते हैं। भाषा काव्य में छः प्रकार के तुकान्त हो सकते हैं:—

१-सर्वान्त्य—जैसे किसी सवैया वा कवित्त (मनहरण) के चारो तुकान्त एक से होते हैं।

२—समान्त्य विषमान्त्य अर्थात् पहले और तीसरे चरण का और दूसरे और चौथे चरण का तुकान्त एक हो, जैसे—

(क) जेहि सुमिरत सिधि होय, गणनायक करिवरबदन।
करहु अनुग्रह सोय, बुद्धिरासि शुभगुणसदन ॥
(ख) मूक होहिं वाचालु, पंगु चढ़ै गिरिवर गहन।
जासु कृपा सु दयालु, द्रवहु सकल कलिमल दहन ॥
(ग) कुन्द इंदु सम देह, उमारमण करुणा अयन।
जाहि दीन पर नेह, करहु कृपा मर्दन मयन ॥

३-समान्त्य-जिसमें केवल दूसरे और चौथे चरण का तुकान्त समान हो-जैसे दोहा का होता है।

दो०-एक छत्र इक मुकुट मणि, सब वर्णन पर जोउ।
तुलसी रघुबर नाम के, वरण विराजत दोउ ॥
या अनुरागी चित्त की, गति समुझै नहिं कोय।
ज्यौं ज्यौं भीजै स्याम रङ्ग, त्यौं त्यौं उज्जल होय ॥

४-विषमान्त्य-जिसमें पहले चरण और तीसरे चरण का तुकान्त एक सा हो-जैसे—

सो०-सुनि केवट के बैन, प्रेम लपेटे अटपटे।
विहँसे करुणा ऐन, चितै जानकी लखन तन ॥
धरणि धरहु मन धीर, कह विरंचि हरि पद सुमिरि।
जानत जन की पीर, प्रभु भंजहिं दारुण विपति ॥

५-सम विषमान्त्य-जिसमें पहले और दूसरे का और तीसरे और चौथे चरण का तुकान्त एकसा हो। जैसे—

चौपाई—

गुनहु लखन कर हमपर रोषू। कतहु सुधाइहुते बड़दोषू।
टेढ़ जानि शंका सबकाहू। वक्र चन्द्रमहिं ग्रसै न राहू ॥

छंद–पद कमल धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहौं।
मोहिं राम राउरि आन दसरथ सपथ सब सांची कहौं॥
बरु तीर मारहिं लखन पै जब लगि न पाँव पखारिहौं।
तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपालु पार उतारिहौं॥

६–भिन्नान्त्य—भिन्न तुकान्त वा बेतुकी-जिसमें चारो चरणों में भिन्न भिन्न तुकान्त हों। इसे अँगरेजी में 'ब्लैंकवर्स' (Blank verse) कहते हैं। हिन्दी के प्राचीन कवियों ने ऐसी कविता नहीं लिखी, हालमें कुछलोग लिखने लगे हैं। जैसे पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय ने अपने 'प्रियप्रवास' में लिखी है।

सूचना–भिन्न तुकान्त कविता के लिये कुछ वर्णिक छन्द ही उपयुक्त जान पड़ते हैं–जैसे–शार्दूलविक्रीड़ित, वंशस्थ, द्रुतविलंवित, इन्द्रवज्रा, भुजंगप्रयात, वसंततिलका इत्यादि। मात्रिक, छन्दों में भिन्न तुकान्त कदापि अच्छा नहीं लगता।

(२)–चित्र

दो०–चित्र बरण विन्यास है कमलादिक आकार।
गोरखधंधा सम निरस त्यागत सुकवि विचार॥

विवरण—छंद रचना में ऐसे वर्ण लाना जिनके द्वारा विशेष विशेष विन्यास से विशेष चित्र बन जाये।

१–चित्रकाव्य—इसमें 'अलंकारत्व' नहीं है। केवल कवि की चतुराई और परिश्रम का परिचय मिलता है। इस काव्य द्वारा कमल, छत्र, चक्र, चँवर, खंग, तखत, दण्ड, रथ, ध्वजा, हाथी, घोड़ा, मनुष्य, हंस, दर्पण वृक्ष इत्यादि के चित्र बन सकते हैं। बिस्तारभय से सबके उदाहरण न देकर केवल कुछ ही देते हैं।

कमलबन्ध-(दोहा)

राम राम रम छेम छम शम दम जम श्रम धाम।
दाम काम क्रम प्रेम बम जम जम दम भ्रम बाम।

इस दोहा के प्रत्येक दल में १० शब्द हैं और प्रत्येक शब्द का दूसरा अक्षर 'म' है। इससे चामर, चक्र, दर्पण इत्यादि कई एक अन्य चित्र (चित्र देखो) भी बन सकते हैं।

पुनः-नैन बान हन बैन मन ध्यान लीन मन कीन।
चैन है न दिन रैन तन छिन छिन उन बिन छीन॥

ऊपर लिखे हुए दोहे की भाँति इस दोहे से भी कमल का चित्र बन सकता है। इन्हीं दोनों दोहों से दर्पण, चक्र, मुष्टिका, हार, हलकुंडी, चामर, चौकी, कपाट, इत्यादि बहुत से चित्र बन सकते हैं। कमलबंध और दर्पणबंध को फारसी तथा उर्दू में "सनअतमुदौवर" कहते हैं।

(चामर चित्र देखो)

इस दोहे में भी कमलबंध की सी रचना है। प्रत्येक दल में १० शब्द और प्रत्येक शब्द का दूसरा अक्षर एक ही 'न' है। इससे भी कमलबंध बन सकता है।

(धनुष बंध-दोहा)

परम धरम हरि हेरहीं केशव सुनै पुरान।
मन मन जानै नार द्वै जिय जसु गुन तन आन॥

इस चित्र में बाण के आकार में तीन जगह २ के अंक हैं। उन अक्षरों को दो बार पढ़ो।

इसी चित्रालंकार के अंतर्गत प्राचीन कवियों ने अनेक भेद माने हैं, जिनमें मुख्य २ ये हैं।

२—निरोष्ठ—जिसके पढ़ने में परस्पर ओंठ न छू जायँ-जैसे

लोकलीक नीकी लाज लीलत से नंदलाल लोचन ललित लोक लीला के निकेत हैं। सौंहनि को सोच ना सकोच लोका-लोकनि को देत सुख ताको सखी दूनो दुख देत हैं॥ केशोदास कान्हर कनेर ही के कोरक से अंगरंग राते अंतरंग अति सेत हैं। देखि देखि हरि की हरनता हरिननैनी देखत ही देख्यो नहीं हियो हरि लेत हैं॥

ऐसी कविता में प, फ, ब, भ, म इत्यादि अक्षर न लाने चाहिये।

इसको फारसी तथा उर्दू में "वासेउस्शफ्तैन" कहते हैं। इसके ठीक विरुद्ध ऐसी कविता भी हो सकती है जिसके प्रत्येक शब्द के पढ़ने में ओंठ से ओंठ मिलें। ऐसी रचना "सोष्ठ" कहलाएगी।

३—अमत्त—जिसमें मात्राएँ न हों—जैसेः—

जग जगमगत भगत जन रस बस भव-भय हरकर करत अचर चर। कनक बसन तन असन अनल बड़ बटदल बसन सजल थल थलचर॥ अजर अमर अज बरद चरनधर परम धरम गन बरन सरन पर। अमल कमल बर बदन सदन जस हरन मदनमद मदनकदन हर॥

इस अलंकार को फारसी तथा उर्दू में—'मुक़त्ता' कहते हैं।

४—अंतर्लापिका—

दो०—उत्तर आवै अंत में प्रश्न जहां ही होय।
सोई अंतर्लापिका कहत सुकवि सब कोय॥

विवरण—जिस प्रश्न का उत्तर प्रश्न के अंतर्गत ही हो, उसे अंतर्लापिका कहते हैं। जैसे—

दो०-भूषित को हरि अंग? कोह भरे का तिय करै?
काते होय अनंग, ? को मराल हित ? 'मानसर, ॥

यहाँ ४ प्रश्न हैं—हरि के अंग को कौन भूषित करता है? उत्तर 'मा' = (लक्ष्मी)। क्रोधित होकर स्त्री क्या करती है? उत्तर "मान"। काम किससे पैदा होता है? उत्तर 'मानस' = (मन)। हंस का हितू कौन है? उत्तर 'मानसर'। इसलिये 'मानसर' इसका उत्तर है।

दो०—कौन जाति सीता सती? दई कौन कहँ तात?
कौन ग्रंथ वरण्यो हरी? रामायण अवदात ॥

सती सीता जी किस जाति की स्त्री थीं? इसका उत्तर है 'रामा' (जो सबके मनको अपने में रमा ले)।

उसके पिता ने किसको दिया था? उत्तर है 'रामाय' (राम को)। कौन ग्रन्थ में उनका हरण वर्णन किया गया है? उत्तर है 'रामायण'। प्रत्येक प्रश्न के उत्तर में एक एक अक्षर बढ़ता गया है।

५—बहिर्लापिका—"बाहर से उत्तर कढ़े बहिर्लापिका सोय"

विवरण—जिस प्रश्न का उत्तर प्रश्नान्तर्गत न होकर बाहर निकलै, उसे बहिर्लापिका कहते हैं। यथ—

कवित्त—भाषैं काह सज्जन को[1]? कौन शंभु-बाहन है[2]?
को सुख होत? काकी माल[4] शिवधारो है। कहा गजबंधन[5]
नीले दृग काके अति[6]? कौन हरपुत्र[7]? सीपसुत[8] को सुप्यारो
। शोभा[9] को सुनाम का है? कृष्ण नख धारो कहा[10], सिंधु से

मिलत कौन?[११] काह[१२] अनियारो है। उत्तर के वर्णन में आदि अंत छोड़दीजै मध्य लीजै सो हिये मनोरथ महारो है।

१-सयाने २-बरद ३-सुकृति ४-कपाल ५-सांकर ६-हरिणी ७-गनेश- ८-मुकता ९-पानिप १०-पहाड़ ११-सरिता १२-नयन। इन सब शब्दों के मध्याक्षर लेने से जो उत्तर निकलता है, वह छंद के अंतर्गत नहीं है, अतः बहिर्लापिका है।

सूचना-अंतर्लापिका और बहिर्लापिका के तीन तीन भेद हैं (१) आद्य-क्षरी, (२) मध्याक्षरी और (३) अन्त्याक्षरी॥ कवि जैसा चाहे वैसा लिखे।

६-लोमविलोम-सूधो उलटो वांचिये औरै, औरै अर्थ।
ऐसी रचना करि सकै जो कवि महा समर्थ।

विवरण-सीधा पढ़े तो और अर्थ, उलटा पढ़े तो और अर्थ होता है। ऐसी रचना कोई,समर्थ कवि ही कर सकता है।

सूचना-ऐसी रचना भिखारीदास और 'केशवदास' ने की है, परंतु उसका अर्थ बहुत खींच खांच कर लगाना पड़ता है, इससे यहाँ नहीं लिखते।

इसको फारसी तथा उर्दू में "सनअत अक्स" कहते हैं।

७-गतागत-सीधो उलटो बाँचिये एकै अर्थ प्रमान।
कहत गतागत ताहि कवि केशवदास सुजान॥

विवरण-सीधा पढ़े चाहे उलटा, अर्थ वही रहैगा।

सूचना-इस रचना का 'केशव' ने केवल एक ही सवैया कहा है।

अर्थ कठिनता के कारण उसे न लिखकर केवल दो चार शब्दों के उदाहरण देते हैं। जैसे—

तखत। दरद। करक। सहस। कसक। कनक। विकट कवि। नवजीवन।

नोट-फारसी तथा उर्दू में इसको "मकलूब मुस्तवी" कहते हैं।

८-कामधेनु-ऐसी रचना जिससे अनेक छंद बन सकैं, यथा

मोरपखा १	बनमाल २	विराजत ३	बेनु बजै ४
गुणभेव ५	सुपर्सन ६	संगसखा ७	नँदलाल ८
यभ्राजत ९	मोद सजै १०	यगसेव ११	तुकर्सन १२
दद्धिखचा १३	करिख्याल १४	हिलाजत १५	पावत जै १६
अतितेव १७	तुहर्सन १८	ध्यानरखा १९	छबिजाल २०
हिछाजत २१	खांतरजै २२	बलदेव २३	सुदर्सन २४

सूचना—इस सवैया में २४ टुकड़े हैं। जहां से चाहो छः टुकड़ों का एक पद बनाकर पड़ो। इसी तरह चारों पद कह लो, तो २४ छंद बन जावैंगे। (पुनः)

साजत हैं १	सिधिपाय २	इहांसांब ३	मोदरता ४	शुचिवेश ५	प्रणैबर ६
आजत हैं ७	रिधिराय ८	छजेछबि ९	हेतरता १०	बलदेव ११	सुधाधर १२
छाजत हैं १३	बरभाय १४	भनैकवि १५	सुष्टुमता १६	सुखदेश १७	गुणाकर १८
राजत हैं १९	यशछाय २०	यथा रवि २१	रुद्रपता २२	प नरेश २३	कृपाधर २४

सूचना—उपरोक्त रीति से पढ़ने से इसके भी २४ छन्द बन सकेंगे।

२

९–दृष्टिकूटक–दृष्टिकूटक शब्द का अर्थ है "दृष्टि को... वाला" शब्दों की ऐसी रचना जिसका अर्थ केवल देख... से न भासै दृष्टिकूटक कहलाती है।

ऐसी रचना शब्दों ही पर निर्भर है, अतः इसकी शब्दालंकारों ही में होनी चाहिये।

इसमें अर्थ–कठिनता अत्यधिक रहती है, इसलिये लोग ऐसी कबिता की गणना अधम काव्य में करते हैं, ... विचार करने से उसके शब्दों में अलंकारता अवश्य पाई ... हैं। अतः उसे अलंकार मानना ही चाहिये। भक्तशिरो... 'सूरदास' ने इस अलंकार से अच्छा काम लिया है और हो... अलंकार में 'साहित्यलहरी' नामक एक ग्रंथ ही रच डाल... कौन कह सकता है कि सूरकृत इस ग्रंथ के पदों में अलंक... नहीं है। यथाः—

दो०—मेष राशि तें पांच लौं गने कढ़ै जो नाम ...
ता भच्छण द्वादश गये आये नहिं घनश्...

(म...)

दो०—अग्निवह्नीरिपु की सुता, ताके पति को हार,
ता अरिपति की भामिनी, सदा बसै तुव ...

(लक्ष...)

पद—कहै कोइ परदेसी की बात।
मंदिर अरध अवधि हरि बदि गये हरि अहार चलि...
अजयाभख अनुसारत नाहीं कैसे के दिवस सिरा...
ससिरिपु वर्ष भानुरिपु युग सम हररिपु कीन्हे ...
बेद नखत ग्रह जोरि अरध करि सोई बनत अब ख...
मघ पंचम लै गयौ सांवरो ताते जिय अकुल...
सूरश्याम बिनु बिकल बिरहिनी कर मींजत पछित...

वक्तव्य

हिन्दी काव्य का रसास्वादन करने के लिये अलंकारों का जानना बहुत जरूरी है। अनेक अलंकार-ग्रन्थ मौजूद हैं। और होते हुए भी यह ग्रन्थ हमने क्यों लिखा, इसका कारण यह है कि इस विषय के प्रायः समस्त ग्रन्थ ऐसे देखे जाते हैं कि उनके पढ़ाने में शिक्षकों को संकोचभाव धारण करना पड़ता है अर्थात् कोई गुरु अपने शिष्य को, कोई पिता अपने पुत्र को कोई बड़ा भाई अपने छोटे भाई को निःसंकोच भाव से नहीं पढ़ा सकता। युवती कन्याओं को वे ग्रन्थ पढ़ाते हुए संकोच हो सकता है कि उन्हें वे ग्रन्थ आद्योपांत पढ़ाये नहीं जा सकते।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने कुछ परीक्षायें प्रचलित की हैं जिनमें नवयुवक लड़के और नवयुवती कन्यायें सम्मिलित होने लगी हैं। हिंदी काव्य के कुछ अच्छे ग्रन्थ भी पाठ्य पुस्तकों में रखे गये हैं। परन्तु अलंकार विषय समझे बिना काव्य को पूर्णतया समझ लेना दुरूह ही है। और यह विषय शिक्षक के समझाये बिना आ नहीं सकता। कोई गुरु अलंकार विषय का कोई ग्रन्थ शिष्य को निःसंकोच भाव से पढ़ा नहीं सकता इस कठिनता दूर करने के लिये हमने यह ग्रन्थ लिखा है।

प्राचीन ग्रन्थों की अपेक्षा इस ग्रन्थ में नीचे लिखी विशेषतायें हैं:-

१–अलंकार की परिभाषा चुनकर अत्यंत स्पष्ट और सरल पद्य में लिखी गई है।

२–पुनः जहाँ जरूरत जान पड़ी है वहाँ गद्य में उसकी विशद व्याख्या कर दी गई है।

३–प्रत्येक अलंकार के कई एक उदाहरण दिये गये हैं।

४–उदाहरण प्राचीन काव्य से चुने गये हैं।

५–जहाँ तहाँ विशद टिप्पनियाँ और सूचनायें भी दी गई हैं।

६–अलंकारों की बारीकियाँ और भेद गद्य में समझाये गये हैं।

७–यह समस्त ग्रन्थ कोई व्यक्ति किसी व्यक्ति को निःसंकोच भाव से पढ़ा सकता है।

८–उर्दू, फारसी तथा अँगरेज़ी भाषा के अलंकारों के साथ हिन्दी अलंकारों का मिलान भी दर्शाया गया है।

९–कई अलंकारों के विषय में प्राचीनों से मतभेद और अपनी स्वतंत्र सम्मति भी लिखी गई है।

१०–कुछ अलंकारों के दोष भी लिखे गये हैं।

मनुष्य से भूल होती है। इस ग्रन्थ में भी भूलें होंगी। सूचित किये जाने पर अगले संस्करण में भूलों का सुधार कर दिया जायगा।

विनीत–

भगवानदीन

सूची

(३)—पुनरुक्ति प्रकाश

दो०—एक शब्द बहु बार जहँ परै रुचिरता अर्थ।
पुनरुक्ती परकाश सो बरणैं बुद्धि समर्थ॥

विवरण—भाव को अधिक रुचिकर बनाने के लिये एकही शब्द कई बार कहा जाय। जैसेः—

दो०—बनि बनि बनि बनिता चलीं गनि गनि गनि डग देत।
घनि घनि घनि अँखियां सुछबि सनि सनि सनि सुख लेत॥

सवैया—मधुमास में 'दास जू' बीस बिसे मन मोहन आइहैं आइहैं आइहैं। उजरे इत भौनन को सजनी सुख पुञ्जन छाइहैं छाइहैं छाइहैं। अब तेरी सौं एरी न संक एकंक बिथा सब जाइहैं जाइहैं जाइहैं। घनश्याम प्रभा लखिकै सखियाँ अँखियाँ सुख पाइहैं पाइहैं पाइहैं।

सूचना—अङ्गरेजी में इस अलंकार को 'टाटालोजो' (Tautology) कहेंगे। फारसी तथा उर्दू में 'तजनोसमुकर्रर' कहते हैं।

(४)—पुनरुक्तिवदाभास

दो०—जानि परै पुनरुक्ति सी पै पुनरुक्ति न होय।
पुनरुक्तिवदाभास तेहि भूषण कह सब कोय॥

बिबरण—जहाँ दो शब्द ऐसे रक्खे जायें जो पर्यायवाची हों और एक सा अर्थ देते हुए दिखाई दें, परन्तु यथार्थ में अर्थ कुछ दूसरा ही हो, उसे पुनरुक्तिवदाभास अलंकार जानो जैसेः—

दो०—क्यों न होय छितिपाल सो, नीतिपाल जग एक।
जाके निकट जु रहत हैं, सुमनस बिबुध अनेक॥

यहाँ 'सुमनस' और 'बिबुध' का पहली दृष्टि में एकही

अर्थ "देवता" भासता है, परन्तु वास्तव में अर्थ है "सुन्दर चित्तवाले विशेषज्ञ पंडित"

पुनः-वन्दनीय केहिके नहीं वे कविन्द मतिमान।
सुरग गये हू काव्य रस जिनको जगत जहान ॥

यहां 'जगत' और 'जहान' पहले एकार्थवाची जान पड़ते हैं, परन्तु विचार करने से अर्थ स्पष्ट हो जाता है।

पुनः-पुनि फिरि राम निकट सो आई।
प्रभु लछिमन पहँ बहुरि पठाई ॥

यहां पुनि और फिर में आभास है। 'फिर' का अन्वय 'आई' के साथ होगा।"'

पुनः—अली भौंर गूंजन लगे होन लगे दल पात।
जहँ तहँ फूले रूख तरु प्रिय प्रीतम किमि जात॥

यहां अली और भौंर, दल और पात, रूख और तरु, तथा प्रिय और प्रीतम एकार्थवाची जान पड़ते हैं, परन्तु विचारकरने से जान पड़ता है कि:—अली = सखी, पात होन लगे = गिरने लगे। रूख = रूख = सुखे और प्रिय = प्यारा है।

पुनः—(कवित्त) भृगुलात पद हिय प्रियवर राजत हैं, मोरपंख पक्ष साजे मेरे मन भावै है। राजै हार बनमाल आड़ते दिखाई देत "काशिराज" तन पर गोरज सोहावै है। रहै परदोष सांझ समै में बिहारी श्याम ललित अरुण अंग ताम्र को लजावै है। दक्षिण हरित हरे रंग संग बलदेव कुंजर मतंग दंत कंध धरे आवै है॥

इसमें लात और पद, पंख और पक्ष, हार और बनमाल परदोष और सांझ अरुण और ताम्र, हरित और हरे, कुंजर और मतंग एकार्थवाची शब्द जान पड़ते हैं, परंतु अर्थ पृथक् २ हैं। अर्थात् पद = स्थान। पक्ष = पक्षवाले लोग। बनमाल =

वनके वृक्षों का समूह। परदोष=पराया दोष। अरुण=लाल रंग, दक्षिणहरित=दांई ओर। हरे रंग संग=अत्यन्त प्रसन्न चित्त। कुञ्जर=बहुत बड़ा।

पुनः,–(कवित्त) अरिन के दल सैन संगर में समुहाने टूक २ सकल के डारे घमसान में। बार बार रूरो महानद परवाह पूरो बहत हैं हाथिन के मद जल दान में। भूषन भनत महाबाहु भौंसिला भुवाल सूर रवि कैसो तेज तीखनकृपान में। मालमकरंद जू के नन्द कलानिधि तेरी सरजा शिवा जी जस जगत जहान में।

यहाँ भी दल और सैन, सूर और रवि तथा जगत और जहान में वैसाही आभास है। समझने में अर्थ अलग अलग है।

(५) प्रहेलिका (पहेली) ❀

दो०–प्रश्नहि में उत्तर कढ़ै, कछू शब्द के फेर।
सो प्रहेलिका दोय विधि, शब्द अर्थगत हेर॥

(शब्दगत प्रहेलिका)

देखी एक अनोखी नारी। गुण उसमें इक सब से भारी।
पढ़ी नहीं यह अचरज आवै। मरना जीना तुरत बतावै॥

उत्तर–हाथ की नारी (नाड़ी)

बारे से वह सबको भावै। बढ़ा हुआ कुछ काम न आवै।
मैं कह दिया है उसका नाम। अर्थ करो के छाँड़ो गाम॥

उत्तर–दिया (दीपक)

❀ इस अलंकार को फारसी वा उर्दू में 'चीस्तां' वा 'मुअम्मा' कह सकते हैं।

आदि कटे ते सब को पालै। मध्य कटे ते सबको शालै।
अन्त कटे ते सब को मीठा। सो खुसरो मैं आँखों दीठा।

उत्तर—काजल

चहुँ ओर फिर आई। जिन देखी तिन खाई। उत्तर—खाई।

(अर्थगत प्रहेलिका)

लक्ष्मीपति के कर बसै, पाँच वरण गनि लेव।
पहिलो अक्षर छोड़ि के, आय हमैं किन देव॥

उत्तर—(सुदर्शन)

दो०—सब सुख चाहो भोगिबो जो पिय एकहि बार।
चन्द गहै जहँ राहु को जइयो तेहि दरबार।

उत्तर—(राजा बीरबर का दरबार, जहां चंद
नाम का एक द्वारपाल था)

दो०—ऐसी मूरि बताव सखि जेहि जानत सब कोय।
पीठि लगावत जासु रस छाती सीरी होय।

उत्तर—पुत्र

(६)—भाषा-समक ❀

दो०—शब्दन की बिधि एक जहँ भाषा विविध प्रकार।
वाक्य मनोहर होय तहँ भाषा-समक विचार॥

❀ इस अलंकार को फारसी में 'मुलम्मा' कहते हैं। 'हाफ़िज़ शीराज़ी' का प्रसिद्ध शेर है:—

अला या अय्यि उस्साकी अदर कासिन व नाविलहा।
कि इश्क आसां नमूद अव्वल वले उफ़ताद मुश्किलहा॥
इसमें पूर्वार्द्ध अरबी भाषा और उत्तरार्द्ध फारसी है।

(यथा)

जादिन तें जमुना तट वाहि बजावत बाँसुरी नेक निहारो।
होशम रफ्त न माँद बदस्त, भरोस रहै दिन रैन तुम्हारो॥
हाफ़िज़ फ़िक्र कुदाम नुमायम कोई उपाय चलै न हमारो।
हे सखि कोउ उपाव रचौ फिरि बारक देखिय नन्ददुलारो॥

द्रष्टुं तत्र विचित्रतां सुमनसां मैं था गया बाग में।
काचित्तत्र कुरंगशावनयना गुल तोड़ती थी खड़ी॥
उन्ने-भ्रूधनुषा-कटाक्षविशिखैर्घायल किया था मुझे।
तत्सीदार सुदैव मोह जलधौ हैदर गुज़ारे शुकर॥

कासो कहौं मन की कुविथा अपनो तन आप जराने परो।
खेशो बुज़ुर्ग अकारिब राह में देखत खूब लजाने परो॥
वाकी मुरव्वतो उल्फ़त में हमें हाफ़िज़ हाय बिकाने परो।
दिल रफ्तज़ेदस्त शुदा अलमस्त फिसोस महा पछिताने परो॥

साँझ समै घर से निकली लिय संग सखी वह साँवरी मूरत।
नाज़ो नियाज़ नमूद बसे अज़ ताब शुदन् अफ़ज़ूद कदूरत।
मोतन ताकि दियो हँसि कै अभिमान भरी कछु भौंह मरूरत।
होशम रफ्त न माँद बदस्त शुदा दिल मस्त ज़े दीनने सूरत॥

(७)—यमक अलंकार *

दोहा—वहै शब्द फिरि फिरि परै अर्थ और ई और।
सो यमकालंकार है भेद अनेकन ठौर॥

---

* इस अलंकार को अँगरेज़ी में 'पन' [Pun] कहते हैं। उर्दू और फारसी में 'तजनीस ज़ायद' कहेंगे।

बिबरण—वैसा ही शब्द पुनः पुनः सुन पड़ै परन्तु अर्थ जुदा जुदा हो उसे यमक कहते हैं। इसके सब से अधिक भेद 'केशवदास' ने अपनी 'कविप्रिया' में लिखे हैं।

उदाहरण।

दो०—तो पर वारौं उरबसी सुनु राधिके सुजान।
तू मोहन के उर बसी ह्वै उरबसी समान॥
भजन कह्यो तासौं भज्यो भज्यो न एकौ बार।
दूरि भजन जासों कह्यौ सो तैं भज्यो गँवार।

यथा—मूरति मधुर मनोहर देखी। भयउ विदेह विदेह विशेखी

दो०—बारन ते बारन कहूँ होत जुबारन नाहिं।
लागी बार न बधत रिपु इन्हैं सुवारन माँहि॥

सवैया—बसुधाधर में बसुधाधर में औ सुधाधर में त्यौं सुधा में लसै। अलिवृन्दन में अलिवृन्दन में अलिवृन्दन में अतिसै सरसै। हिय हारन में हुरिहारन में हिमि-हारन में रघुराज लसै। ब्रजबारन बारन बारन बारन बारन बार बसन्त बसै।

पुनः—ऐसी परीं नरम हरम पातसाहन की नासपाती खातीं ते बनासपाती खाती हैं।

ऊँचे घोर मंदर के अंदर रहनवारी ऊँचे घोर मंदर के अन्दर रहाती हैं। कन्दमूल भोगकरैं कन्दमूल भोग करैं तीन बेर खाती ते वै तीन बेर खाती हैं। भूखन शिथिल अंग भूखन सिथिल अंग बिजन डोलाती ते वै बिजन डोलाती हैं। भूषन भनत शिवराज वीर तेरे त्रास नगन जड़ातीं तेवै नगन जड़ाती हैं।

(शिवा बावनी)

(मुक्तपदग्राह्य यमक)

दो०—चरण अंत अरु आदि के यमक कुंडलित होय।
मुक्तपदाग्रह है वही सिंहवलोकन सोय॥ यथा—

लाल है भाल सिंदूर भरो मुख सिंधुर चारु औ बाँह बिशाल है।
शाल है शत्रुन को कवि देव सुशोभित सोमकला धरे भाल है॥
माल है दीपत सूरज कोटि लो काटत कोटि कुसंकट जाल है।
जाल है बुद्धि बिबेकन को यह पारवती को लड़ायतो लाल है॥

पुनः

नामहि के सुमिरे सुख पाइहौ और न काम गिनौ जग कामहिं।
कामहि कोऊ न आइहैं ये सुत मातु पिता प्रिय बंधु औ बामहिं॥
बामहिं हैं सिगरे भव के सुख होत नहीं क्षण हू बिसरामहिं।
रामहिं राम रटौ रे रटौ सब वेद पुराण को है परिनामहिं॥

पुनः छप्पय।

सारँग से दृग लाल माल सारँग की सोहत।
सारँग ज्यों तनु श्याम वदन लखि सारँग मोहत॥
सारँग सम कटि हाथ माथ बिच सारँग राजत।
सारँग लाये अंग देखि छबि सारँग लाजत॥
सारँग भूषण पीत पट सारँगपद सारंगधर।
रघुनाथदास वंदन करत सीतापति रघुबंश वर॥

सूचना—स्मरण रखना चाहिये कि लाटानुप्रास में केवल शब्दों ही की नहीं वरन वाक्यों तक की आवृत्ति हो सकती है, केवल अन्वय से अर्थ में हेर फेर होता है। यमक में जिस अक्षर समूह का आवर्तन होता है वह चार प्रकार का होता है—[१] दोनों निरर्थक, जैसे—"मधुपराजि पराजित मानिनी" में 'पराजि' का कुछ अर्थ नहीं। यह उत्तम यमक है। [२] एक सार्थक एक निरर्थक—जैसे

---

* 'सिंहावलोकन' को फारसी में 'सनअत इरसाद' कहेंगे।

"है समर समरस सुभट मरुपति वाहनी विख्यात" में पहले 'समर' का अर्थ है युद्ध और दूसरा 'समर' 'समरस' शब्द का एक खंड होने से निरर्थक है। [३] एक पूर्ण शब्द सार्थक दूसरा खंड होकर सार्थक–जैसे–उरवसी और उर वसी में। ये दोनों मध्यम यमक हैं। [४] भिन्नार्थवाची दो वा अनेक शब्द–जैसे–ऊपरवाली छप्पय में "सारंग" शब्द है। यह अधम यमक है।

(८)–वक्रोक्ति

दो०–होय श्लेष सों काकु सों, कल्पित औरै अर्थ।
ताहि कहत वक्रोक्ति हैं, सिगरे सुकबि समर्थ॥

बिवरण–कहे हुए वाक्य का श्लेष से अथवा काकु से और ही अर्थ कल्पित करें अर्थात् जब वक्ता कोई वाक्य एक अर्थ में कहता है, और श्रोता उसका दूसरा ही अर्थ लगाता है, वहाँ वक्रोक्ति अलंकार होता है। ऐसा अर्थ श्लेष से वा काकु से हो सकता है।

(श्लेषवक्रोक्ति)

श्लेष वक्रोक्ति दो प्रकार की होती है–(१) भंगपद (२) अभंगपद।

(१) भंगपद वह है जिसके पद को तोड़ फोड़ कर दूसरा अर्थ किया जाय, जैसे—

"गौरवशालिनी प्यारी हमारी सदा तुमही इक इष्ट अहो"।

श्री महादेवजी पारवती जी से कहते हैं कि हे गौरव-शालिनी प्यारी! तुम्हीं हमारी सदा इष्टदेवी हो। पारवती जी शब्दों को तोड़ कर हँसी से कहती हैं—

"हौं न गऊ नहिं हौं अवशा अलिनी हू नहीं अस काहे कहो"। अर्थात् न मैं 'गौ, हूँ न 'अवशा, हूँ और न' अलिनी, हूँ, तुम ऐसा क्यों कहते हो।

अर्थात् गौः + अवशा + अलिनी = गौरवशालिनी।

पुनः–मान तजो गहि सुमति वर, पुनि पुनि होत न देह।
मानत जोगी जोग को, हम नहिं करत सनेह।

कोई व्यक्ति किसी से कहता है–" हे श्रेष्ठ ! सुमित गहि के मान तजो। वह व्यक्ति शब्दों को तोड़ कर 'मान तजो गहि' को 'मानत जोगहिं' समझकर उतर देता है। (पुनः)

दो०–नारी के अनुकूल तुम, आचरत जु दिनरात।
कौन अरिन सों हित करत है बसुधा विख्यात॥

यहाँ उत्तरार्द्ध में 'नारी' शब्द को तोड़कर न + अरि करके उत्तर दिया है।

सूचना–उर्दू तथा फारसी में ' सभंगपद श्लेष' को ' तजनीस मुरक्कब' और ' अभंगपद श्लेष को "तजनीस ताम" कह सकते हैं।

(२) अभंगपद वह है जिनमें शब्द वा पद तोड़ा न जाय किन्तु अनेकार्थ कोष से किसी शब्द का अथ ऐसा लिया जाय जो कहनेवाले के अर्थ से भिन्न हो। जैसे—

कवित्त–खोलो जू किवार, तुम को हो पतीबार ? हरिनाम है हमारो, बसो कानन पहार मैं। हौं तो प्यारी, माधव, तो कोकिला के माथे भाग, मोहन हौं प्यारी, परो मंत्र अभिचार में। रागी हौं रँगीली, तो जु जाहु काहू दाता पास, भोगीहौं छबीली, जाय बसौ जू पतार में। नायक हौं नागरी, तो हाँको कहूं टाँड़ो जाय, हौं तो घनश्याम, बरसो जू काहू खार में।

(इसमें कृष्ण और राधिका का परिहास बर्णन है)

कृष्ण जी अपना जो नाम बताते हैं उसी का दूसरा अर्थ लेकर राधिका उत्तर देती जाती हैं। राधिकाजी का अर्थ हरि = बंदर। माधव = बैसाखमास। मोहन = मोहनप्रयोग

(मारण मोहन इत्यादि का), रागी = गवैया । भोगी = सर्प । नायक = बंजारा । घनश्याम = काला बादल । (पुनः)

दो०-को तुम ? हरि प्यारी ! कहा बानर को पुर काम ।
श्याम, सलोनी ! श्याम कपि ! क्यौं न डरै तब बाम ।

सूचना–इन उपरोक्त उदाहरणों में यदि श्लिष्ट शब्दों को पर्याय शब्दों से बदल दें तो काव्य बिलकुल नष्ट भ्रष्ट हो जायगा अर्थात् इन छंदों का कवित्व उन्हीं शब्दों पर निर्भर है इसलिये इनमें शब्दालंकार है ।

(काकु वक्रोक्ति)

दो०-जहाँ कंठध्वनि भिन्न तें, आशय जुदो लखाय ।
सो वक्रोक्ती काकु है, कविवर कहैं बुझाय ॥

विवरण–जहाँ शब्द के उच्चारण में कंठध्वनि से कुछ और ही अर्थ भासे वहाँ काकु समझो ।

सूचना–इसके उदाहरण रौद्ररसपूर्ण वा हास्य रसपूर्ण वाद-विवाद में अधिकता से हुआ करते हैं । रामायण में अंगद और रावण के संवाद में बहुत से हैं–यथाः—

अंगद–कहकपि धर्मशीलता तोरी । हमहुँ सुनीकृत पर तिय चोरी
धर्मशीलता तव जग जागी । पावा दरश हमहुँ बड़ भागी ॥
अङ्गद–सत्य कह्यौ दशकंठ सब, मोहि न सुनि कछु कोह ।
कोउ न हमारे कटक अस, तो सन लरत जो सोह ॥
पुनः-कह कपि तव गुणगाहकताई । सत्य पवन सुत मोहिसुनाई॥
कह अङ्गद सलज्ज जगमाहीं । रावण तोहिं समान कोउ नाहीं॥
सो भुजबल राख्यो उर घाली । जीतेउ सहसबाहु बलि बाली॥
(सीता)मैंसुकुमारिनाथबन योगू । तुमहिं उचितत्पमोकहँ भोगू ॥

पुनः–दो०–काह न पावक जारि सक, का न समुद्र समाय ।
का न करै अबला प्रबल, केहि जग काल न खाय ॥

(राम) मानस सलिलसुधाप्रति पाली। जियै किलवणपयोधिमराली
नव रसाल बन विहरन शीला। सोह कि कोकिल विपिन करीला॥

सूचना—अनेक अचार्यों ने इस अलंकार को अर्थालंकार माना है। पर हम इसे शब्दालंकार ही मानते हैं। क्योंकि विशेष कंठध्वनि ही से इसमें अर्थ का हेर फेर होता है। कंठध्वनि श्रवण का विषय है। श्रवण मात्र की अलंकारता शब्दालंकार ही मानी जा सकती है।

(६)—विप्सालंकार

दो०—आदर अचरज आदि हित, एक शब्द बहुबार।
ताही विप्सा कहत हैं, जे सुबुद्धि भांडार॥

विवरण—आदर, ताकीद, आश्चर्य अथवा अन्य कोई आकस्मिक भाव प्रगट करने के हेत एक शब्द कई वार कहा जाय, वही विप्सालंकार है।

(आदर) १—शिव शिव ह्वै प्रसन्न करु दाया।
२—राम राम राम जीह जौलौं तू न जपिहै।
तौलौं तू कहूं जाय तिहूं ताप तपिहै।
३—राम राम रमु, राम २ रटु, राम राम जपु जीहा।
४—राम राम राम राम राम राम जपत।
मंगल मुद उदित होत कलिमल छल छपत

दो०—राम राम कहि राम कहि, राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुबर बिरह, राउ गयो सुरधाम॥

ताकीद(१)राम कहत चलु राम कहत चलु राम कहत चलु भाई रे
नाहीं तो भव बिगारि महँ परिहौ छूटत अति कठिनाई रे॥
२—राम जपु राम जपु राम जपु बावरे।
घोर भव नीरनिधि राम निज नाव रे।
(आश्चर्य) राम राम! यह क्या करते हो।

(घृणा) छिः छिः उसे मत छुओ!
(पश्चात्ताप)–रामराम। यदि मैं जानता कि ऐसा होगा तो मैं यह काम न करता।
(अहंकार)–भाई भाई, क्या तुम्हीं बड़े बुद्धिमान हो?

सूचना–इसी प्रकार और भी आकस्मिक भाव प्रगट करने के लिये शब्द दोहराये तेहराये जाते हैं।

(१०)–श्लेष

दो०–दोय तीन अरु भाँति बहु आवत जामें अर्थ।
श्लेष नाम ताको कहत जिनकी बुद्धि समर्थ॥

विवरण–ऐसे शब्दों का प्रयोग जिनके दो तीन अर्थ हो सकते हों, श्लेष अलंकार कहलाता है। इसके दो भेद होते हैं–(१) वह जहाँ कवि का मुख्य तात्पर्य एक ही अर्थ से होता है। इसकी गणना शब्दालंकारों में हो सकती है। (२) वह जहाँ कवि का तात्पर्य दोनों वा तीनों अर्थों से होता है। इसकी गणना अर्थालंकारों में होनी चाहिये।

उदाहरण

"रावण सिर सरोज बनचारी। चली रघुवीर शिलीमुख धारी"

यहाँ पर 'शिलीमुख' शब्द के दो अर्थ हैं (१) बाण (२) भौंरा। तुलसीदासजी कहते हैं कि जैसे भौंरा दौड़कर कमल वन में जाते हैं और कमलों में घुस जाते हैं, उसी प्रकार रघुनाथजी के शिलीमुख (बाण) रावण के शिरों में घुसने लगे। तुलसीदासजी का मुख्य लक्ष्य बाणों की ओर जान पड़ता है न कि बाण और भौंरा दोनों की ओर। इस हेतु यह श्लेष शब्दालंकार है। इसी प्रकार बिहारी कृत नीचे लिखे दोहों में एक अर्थ की मुख्यता है, इसलिये इन दोनों का श्लेष शब्दालंकार है।

दो०—अजौं तर्योना ही रह्यौ श्रुति सेवत इक अंग।
नाक बास बेसरि लह्यौ बसि मुकुतन के संग॥

इसमें तर्यौना, श्रुति, नाक, मुकुतन शब्दों में श्लेष है। परन्तु बिहारी का मुख्य तात्पर्य कर्णफूल और नथ से है न कि किसी मुमुक्षु से जैसा कि श्लेष में व्यंजित होता है। इसीसे यह शब्दालंकार है। इसी प्रकार नीचे के दोहों में समझना चाहिये।

दो०—जो चाहो चटक न घटै मैलो होय न मित्त।
रज राजस न छुवाइये नेह चीकने चित्त॥

(इसमें रज और नेह शब्दों में श्लेष है)

दो०—दूरि भजत प्रभु पीठि दै गुन विस्तार न काल।
प्रगटत निर्गुन निकट ही चङ्ग रंग गोपाल॥

(इसमें गुन और निर्गुन शब्दो में श्लेष है)

नीचे लिखे हुए रसनिधि कृत दोहों में भी ऐसा ही समझो। इनमें 'नेह' शब्द में श्लेष है।

दो०—धनि दृगतारन के जु तिल जिनमें स्याम सनेह।
बिना नेह के तिल किते परे रहत हैं देह॥
कहनावत यह मैं सुनी पोषत तनको नेह।
नेह लगाये अब लगी सूखन सिगरी देह॥
आपु बुसाते सज्जना नेह न दीजै जान।
नेही तिल नेहै तजे खरि ह्वै जात निदान॥

(खरि=खली, निर्दई)

चलि न सकैं निज ठौर तें जे तन द्रुम अभिराम।
तहाँ आय रस बरसिबो लाजिम तोहि घनश्याम॥

(रस = पानी, आनन्द । घनस्याम = काला बादल, कृष्ण)

सूचना—जहाँ कवि का स्वयं यह तात्पर्य होता है कि पाठक दोनों या तीनों अर्थों की ओर ध्यान दें वह श्लेष अर्थालंकार है। प्रसंगवश उसके कुछ उदाहरण यहीं लिखे देते हैं जिससे पाठक गण दोनों के भेद और बारीकी को भलीभांति समझ सकें।

(अर्थगत श्लेष के उदाहरण)

श्लो०-यः पूतनामारणलब्धकीर्तिःकाकोदरो येन विनीतदर्पः
यशोदयालंकृतमूर्तिरव्यान्नाथो यदूनामथवा रघूणाम् ॥

स्वयं कवि कहता है कि इसका तात्पर्य यदुनाथ (कृष्ण) और रघुनाथ (राम) दोनों पर घटित हो सकता है।

केशव कृत 'रामचन्द्रिका' में जब रामचन्द्र की सेना समुद्र पार जाकर सुवेल पर्वत पर ठहरी है, उस समय केवश ने एक विद्वत्तामय कवित कहा है जिसमें रामजी की सेना के लिये अन्तिम चरण में कहा है कि-यह राम की सेना है, कि विभीषण की राज्यश्री है, कि रावण की मृत्यु है। इससे स्पष्ट विदित होता है कि कवि का लक्ष्य तीनों अर्थों पर है। इसलिये उसे अर्थालङ्कार ही मानना पड़ेगा।

(केशव कहते हैं)

कुंतल ललित नील भृकुटी धनुष नैन कुमुद कटाक्ष बाण सबल सदाई है। सुग्रीव सहित तार अंगदादि भूषणन मध्य देश केशरी सुगज गति भाई है। विग्रहानुकूल सब लक्ष लक्ष ऋक्ष बल ऋक्षराजमुखी मुख केशोदास गाई है। रामचन्द्रजू की चमू राज श्री विभीषण की रावण की मीचु दरकूच चलि आई है।

(सेनापति कवि सूम और दाता दोनों के लिये कहते हैं)

नाहीं नाहीं करैं थोरे माँगे बहु देन कहैं मंगन को देखि पट[1] देत बार बार हैं। जाको मुख देखे भली प्रापति की घरी होत सदा सुभ जन[2] मन भाये निरधार हैं॥ भोगी[3] ह्वै रहत बिलसत अवनी के मध्य कन कन[4] जोरैं दान पाठ पर बार हैं। सेनापति बैनन की रचना बिचारी जामें दाता अरु सूम दोऊ कीन्हे इकतार हैं।

(१) पट=वस्त्र, किवाड़। (२)=दातापक्ष में 'सुभजन मन भाये' और सूम पक्ष में 'सुभ जनम न भाये'। (३) भोगी=भोग विलास करने वाला, और साँप। (४) कन-कन=कनक न और कणकण (थोड़ा थोड़ा)

(भूषण कवि कहते हैं)

सीता संग सोभित सुलच्छन सहाय जाके भूपर भरत नाम भाई नीति चारु है। भूषन भनत कुल सूरकुल भूषन हैं दासरथी सब जाके भुज भुव भारु है। और लंक तोर जोर जाके संग बान रहैं सिंधुर है बाँधे जाके दलको न पारु है। तेगहि कै भेटै जौन राकस मरद जाने सरजा शिवाजी राम ही को अवतारु है॥

इसमें अन्तिम चरन के अन्तिम वाक्य से स्पष्ट प्रगट होता है कि कवि का लक्ष्य दोनों ओर है।

सीता संग सोभित=श्री तासंग सोभित। लच्छन=लक्ष्मण, शुभ लक्षण। भरत=भरता है, भरत जी। सूरकूल=सूर्यकुल=वीरगण। दासरथी=दशरथ के पुत्र, रथी हैं दास जिसके। लङ्क=लङ्का, कमर। बान रहैं=बाण रहते हैं, वानर हैं। सिंधुर है बाँधे=सिंधु को बाँधा, हाथी घोड़े बँधे रहते हैं। तेगहि कै

भेटैं=तलवार ही से भेंटता है, उसको पकड़ कर भेंटता है। जोनराकस मरद जानै=जो नर अकस में मरद समझता है, जो राक्षसों को मर्दन करना चाहता है।

इसी प्रकार और भी उदाहरण समझ लेना चाहिये। अर्थश्लेष के और अधिक उदाहरण अर्थालंकार में दिये जायँगे।

सूचना—शब्दश्लेष में एक वा दो शब्द होते हैं और उनका श्लेषार्थ केवल उन्हीं शब्दों पर निर्भर रहता है। यदि वे शब्द पर्यायवाची शब्दों से बदल दें तो वह अलंकार ही मिट जाता है। इसी से उसे शब्दालंकार मानना पड़ा है।

अर्थश्लेष में शब्दों को बदल देने पर भी अलंकार बना रहता है। कहीं ऐसा भी होता है कि कुछ शब्दों को बदल सकते हैं, कुछ को नहीं बदल सकते। ऐसे स्थान पर जिसकी प्रधानता हो वही मानना चाहिये।

[दूसरा पटल]

अर्थालङ्कार

(१)—उपमा ❀

अर्थालङ्कारों में सर्वोत्तम और अनेक अलङ्कारों का मूल उपमा अलङ्कार है। इसी से इसे पहले लिखते हैं।

दोहा—रूप रंग गुण काहु को काहू के अनुसार।
तासों उपमा कहत हैं जे सुबुद्धि आगार॥
जाको वर्णन कीजिये सो उपमेय प्रमान।
जाकी समता दीजिये ताहिं कहिय उपमान॥
उपमेय रु उपमान में समता जेहि हित होय।
सो साधारण धर्म है कहत सयाने लोय॥
सो, से, सी, इव, तूल, लौं, सम, समान उर आन।
ज्यों, जैसे, इमि, सरिस, जिमि, उपमा वाचक जान॥

कहीं कहीं "रंग, नाई, न्याय, और मतिन" भी बाचक होते हैं।

विवरण—जब दो वस्तुओं में पृथकता रहते हुए भी कोई समता वर्णन की जाय तब उपमा अलंकार होता है। समता आकृति, रंग और गुण की होनी चाहिये। वर्णन करने में जिसकी मुख्यता हो उसे 'उपमेय' जिससे समता दें उसे 'उपमान' जिस हेतु समता दें उसे 'धर्म' और जिस शब्द के आश्रय से समता प्रगट करें उसे 'बाचक' कहते हैं। जैसे—

❀ अँगरेजी में इस अलंकार को 'सिमिली' (Simile) और फारसी तथा उर्दू में 'तशबीह' कहते हैं।

बन्दौं कोमल कमल से जगजननी के पायँ ।

इसमें कवि का मुख्य तात्पर्य जगजननी (पार्वती) के चरणों के वर्णन से है, इस हेतु 'पाँय' शब्द 'उपमेय' है। कमल 'उपमान' कोमल 'धर्म' और 'से' वाचक है।

उपमा के दो भेद हैं-(क) पूर्णा (ख) लुप्ता ।

क-(पूर्णोपमा)

वाचक साधारण धरम उपमेय रु उपमान ।
ये चारो जहँ प्रगट तहँ पूरण उपमा जान ॥

उदा०-राम लखन सीता सहित सोहत परणनिकेत ।
जिमि बासव बस अमरपुर शची जयंत समेत ॥

यहाँ राम लखन और सीता उपमेय, वासव (इन्द्र) जयंत और शची उपमान, 'सोहत' धर्म और 'जिमि' वाचक, चारो प्रगट हैं। इसी प्रकार और भी जानो। यथा—

सो०-उदय सूर सो भाल, सिंदुर घसो गनेस को ।
हरत विघन को जाल, जो जग व्यापक तिमिर सो ॥

यहाँ भाल उपमेय सूर उपमान, उदय साधारण धर्म 'सो' वाचक और विघ्नजाल उपमेय, तिमिर उपमान, हरत धर्म और 'सो' वाचक प्रगट है।

पुनः-आनँद देत चकोर हितून को है खल कोकन को दुखवारो
कन्त है संत कुमोदन को कल चाँदनी किध्रि महा सित भारो ॥
गोकुल शील सुधा सरसै बरसै सुख है अति ही उजियारो ।
मंद करै अरविंदन को यश चन्द सो सेत महीप तिहारो ॥
सेवहिं लखन सीय रघुवीरहिं । जिमि अविवेकी पुरुष शरीरहिं ।
रामहिं लखन विलोकत कैसे । शशिहि चकोर किशोरक जैसे ॥

कवित्त—फूलि उठे कमल से अमल हितू के नैन, कहै 'रघुनाथ, भरे चैनरस सियरे । दौरि आये भौंर से करत गुनी गुन

गान सिद्ध से सुजान सुख सागर सों नियरे। सुरभी सी खुलन सुकविकी सुमति लागी, चिरिया सी जागी चिन्ता जनक के जियरे। धनुष पै ठाढ़े राम रवि से लसत आज भोर के से नखत नरिंद परे पियरे।

पुनः१–करिकर सरिस सुभग भुजदण्डा।
२–पीपर पात सरिस मन डोला।
३–विरही इव प्रभु करत विषादा॥

(पूर्णोपमा का चक्र)

नाम	उपमेय	उपमान	वाचक	धर्म	उदाहरण
पूर्णोपमा	राम	रवि	से	लसत	=राम रवि से लसत
	नरिंद	भोरकेनखत	से	परेपियरे	भोरकेसेनखतनरिंदपरपियरे
	भुजदण्ड	करिकर	सरिस	सुभग	करिकरसरिससुभगभुजदंडा
	मन	पीपरपात	सरिस	डोला	पीपरपातसरिसमनडोला
	प्रभु	विरही	इव	करतविषादा	विरहीइवप्रभुकरतविषादा

सूचना–उपमालंकार के प्रयोग से निम्न–लिखित पाँच लाभ हैं:—

(१) अभीष्ट वस्तु का सम्यक ज्ञान होता है।

(२) दो वस्तुओं की चमत्कारिक तुलना से चित्त प्रसन्न होता है।

(३) उपमाजनित परिणामदर्शन से स्थायी शिक्षा मिलती है।

(४) भाषा में चमत्कार और सौन्दर्य आ जाता है।

(५) थोड़े में बहुत सा बोध होता है।

अतः कविता में इस अलंकार की अनिवार्य आवश्यकता है।

ख-(लुप्तोपमा)

दो०—वाचक साधारण धरम उपमेय रु उपमान।
इन में इक द्वै तीन बिनु लुप्ता बिविध बिधान॥

विवरण—पूर्णोपमा में चार वस्तुएं होती हैं। इनमें से जहाँ किसी का लोप हो वहाँ लुप्तोपमा कहते हैं।

इस विषय में भिन्न आचार्यों के भिन्न २ मत हैं। हमारे मत से जो हमें ठीक जँचते हैं उन्हीं को हम यहाँ लिखते हैं।

१–(वाचकलुप्ता)

जहाँ वाचक शब्द का लोप हो—जैसे—

१-जारि दियो उपसुन्द सुत दुसह रूप दुख धाम।
सूर शिरोमणि रावरे राम काम अभिराम।

२-सरदमयंक बदन छविसीवाँ।

३-नव अम्बुज अम्बक छवि नीकी।

४-शरद विमल विधु बदन सोहावन।

५-नील सरोरुह श्याम तरुण अरुण वारिज नयन।

यहाँ सो, से, सम इत्यादि वाचक शब्दों का लोप किया गया है।

२ (धर्मलुप्ता)

जहाँ साधारण धर्म का लोप हो-जैसे—

१-करि प्रणाम रामहि त्रिपुरारी। हरषि सुधा सम गिरा उचारी।

२-तुम सम पुरुष न मो सम नारी।

३-गौतम नारी तर गई रही जो अघ सों पूरि।
पाय सजीवन मूरि सी प्रभु पद पंकज धूरि।

४-बाहें भुजङ्गसी, पल्लव से कर आँगुरी पै नख हीरक हार से।
त्यों लछिराम घटान से रंग प्रभा विहँसे मुकुताहल थार से।
ये भ्रमरावलि लौं जुलफै युगभौंहैं कमानसी आनन मार से।

बालमयंक लौं भालथली रघुनाथ के लोचन खंजकुमार से।
५-कुंद इंदु सम देह उमारण करुणायतन।
६-करिकर सम प्रभुभुज दशकंधर।

इन उदाहरणों में साधारण धर्म का लोप किया गया है। इसी प्रकार और भी लुप्ताओं में केवल नाम ही से उसकी परिभाषा जान लेनी चाहिये।

३-(उपमानलुप्ता के उदाहरण)

१-वाके से चंचल नयन जग काहू के हैं न।
२-सुन्दर नन्दकिशोर सो जग में मिलै न और।
३-लक्खन राम से राज समाज में राजत कौन महीप के बारे।
४-समर घोरनहिंजाय बखाना। तेहिसमनहि प्रतिभट जगआना।

४ (उपमेयलुप्ता के उदाहरण)

१-चंचल हैं ज्यौं मीन अरुणारे पंकज सरिस।
निरखि न होय अधीन ऐसो नर नागर कवन।
२-साँवरे गोरे घटा छटा से बिहरैं मिथिलेशकी बागथली में।

५ (वाचकधर्मलुप्ता)

जिसमें वाचक शब्द और साधारण धर्मका लोप किया जाय।
१-ईशप्रसाद असीस तुम्हारी। सब सुतबधू देवसरि-वारी।
२-विधुबदनी मृगशावकलोचनि।
३-लखु लखु सखि सारसनयन इंदुबदन घनश्याम।
बिज्जुहास दाडिमदसन बिम्बाधर अभिराम॥
४-केहरिकंधर चारु जनेऊ।
५-लहि प्रसाद माला जु भौ तनु कदंब की माल।

सूचना-इनके कथन में बड़ी सावधानी चाहिये। तनक ही भेद से यह अलंकार रूपक अलंकार हो जाता है।

६–(धर्मोपमेय लुप्ता)

जिसमें धर्म और उपमान का लोप किया जाय।

१–रे अलि मालति सम कुसुम ढूंढ़ेहु मिलिहै नाहिं।

यहाँ मालती कुसुम उपमेय, सम वाचक मौजूद है। सुंदर, मनोहर आदि धर्म का और 'मिलिहै नाहिं' कहकर उपमान का लोप किया गया है।

२–आजु पुरंदर सम कोउ नाहीं।

३–देखो दाडिम से दसन।

यहाँ 'दसन' उपमेय और 'से' वाचक मौजूद है। स्वेत, चमकीले इत्यादि धर्म का और 'दाडिमबीज' उपमानका लोप है, क्योंकि केवल 'दाड़िम' दाँतों का उपमान नहीं कहा जा सकता। दाड़िम शब्द केवल उसका लक्षक है।

४–देख्यों खोजि भुवनदशचारी। कहँ अस पुरुष कहाँ अस नारी

७ (धर्मोपमेय लुप्ता)

जहाँ धर्म और उपमेय का लोप किया जाय। जैसे—

१–त्यौर तिरीछे किये मुनि संगहि हेरत संभु सरासन मार से।
त्यौं लछिराम दुहूं कर बान कमानसी भौंहैं सुब्रह्मवतार से।
सामुहें श्रीमिथिलापतिकेडटिठाढ़े सही रसवीरसिंगार से।
नीलम चंपक मालसे कौन? स्वयम्बरमें मृगराजकुमार से।

यहाँ मार से, रस वीर सिंगार से, नीलम चंपक माल से और मृगराजकुमार से इत्यादि में उपमान और वाचक मौजूद हैं। धर्म का प्रत्यक्ष लोप है। अज्ञानसूचक 'कौन' शब्द कहकर उपमेय का लोप किया गया है, जो मुनि संग, श्रीमिथिलापति सामुहें, और स्वयम्बर इत्यादि के साहचर्य से लक्षित होता है।

८—(वाचकोपमेय लुप्ता)

जहाँ वाचक और उपमेय का लोप किया जाय-जैसेः—

१-अटा उदित होतो भयो छविधर पूरण चन्द्र ।

२-चढ़ो कदम पै कालिया विषधर देखो आय ।

९—(वाचकोपमान लुप्ता)

जिसमें वाचक औरउपमान का लोप किया जाय ।

१-तेरे ये कटु वचन हू सुनत हियो हरषात ।

२-सूच्छम हरि कटि ऐन ।

३-चितवनि चारु मारमदहरनी । भावत हृदय जाति नहिं बरनी ।

४-अरुण नयन उर बाहु बिशाला ।

५-सुनि केवट के बैन प्रेम लपेटे अटपटे ।

६-मूरति मधुर मनोहर देखी । भयो विदेह विदेह विशेषी ।

१०—(वाचक-धर्म-उपमान लुप्ता)

जिसमें केवल उपमेय का जिक्र हो और युक्ति से उपमान का अभाव कहा जाय ।

१-राम सरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर ।

२-अहै अनूप राम प्रभुताई । बुधि बिवेक बल तरकि न जाई ।

३-देखि अनूप एक अमराई ।

४-अति अनूप जहँ जनक निवासू ।

५-बलि बांधत प्रभु बाढ़ेऊ सो तनु बरणि न जाय ।

सूचना–'वाचक धर्म उपमेय लुप्ता' का 'रूपकातिशयोक्ति' अलग ही एक अलंकार है। 'धर्म उपमान उपमेय लुप्ता' में केवल वाचक रहैगा जिससे कोई अलंकारता नहीं आ सकती, और 'वाचकोपमेयोपमान लुप्ता' में केवल साधारण धर्म के कथन से अलंकारता आ नहीं सकती ।

(लुप्तालंकार-सूचक चक्र)

नाम	उपमेय	उपमान	धर्म	वाचक
१-वाचकलुप्ता	राम	काम	अभिराम	×
	नयन	वारिज	तरुण अरुण	×
२-धर्मलुप्ता	तुम	पुरुष	×	सम
	मो	नारी	×	सम
	देह	कुंद, इंदु	×	सम
३-उपमानलुप्ता	नन्दकिशोर	×	सुन्दर	सो
	लक्खनराम	×	राजत	से
४-उपमेयलुप्ता	×	घटा	साँवरे	से
	×	छटा	गोरे	से
५-वाचकधर्मलुप्ता	सुतवधू	देवपरिवारी	×	×
	कंधर	केहरि(कंधर)	×	×
६-धर्मोपमानलुप्ता	पुरन्दर	×	×	सम
	पुरुष	×	×	अस
	नारी	×	×	अस
७-धर्मोपमेयलुप्ता	×	नीलपचंतकनाल	×	से
	×	मृगराजकुमार	×	से
८-वाचकोपमेयलुप्ता	×	पूर्णचन्द्र	छबिधर	×
९-वाचकोपमान लुप्ता	नयन	×	अरुण	×
	उर	×	विशाल	×
	बाहु	×	विशाल	×
१०-वाचकधर्मोपमान लुप्ता	रामप्रभुताई	×	×	×
	जनकनिवासू	×	×	×
	अमराई	×	×	×

उदाहरण

=राम काम अभिराम।
=तरुण अरुण वारिज नयन।
=तुम सम पुरुष न मो सम नारी।
=कुंद इंदु सम देह
=सुन्दर नन्दकिशोर सो जग में मिलै न और।
=लक्खनराम से राजसमाज में राजत कौन महीप के बारे।
=साँवरे गोरे घटा छटा से विहरैं मिथिलेश की बागथली में
=सब सुतबधू देवसरि वारी।
=केहरि कंधर चारु जनेऊ।
=आजु पुरन्दर सम कोउ नाहीं।
=कहं अस पुरुष कहां अस नारी।
=नीलम चंपल माल से कौन स्वयंवर में मृगराजकुमार से।
=अटा उदय होतो भयो छबिधर पूरण चंद।
=अरुण नयन उर बाहु बिशाला।

= { अहै अनूप राम प्रभुताई।
अति अनूप जहँ जनक निवासू।
देखि अनूप एक अमराई।

जो पाठक उर्दू हिन्दी अङ्गरेजी तीनों भाषायें जानते हों वे आगेवाले चक्र को भली भांति समझ लें—

हिन्दी	उर्दू वा फ़ारसी	अँगरेज़ी
उपमा	तशबीह	सिमिली Simile)
पूर्णोपमा	तशबीह कामिल	कम्प्लीट सिमिली (Complete Simile)
उपमेय	मुशब्बह	दी सबजेक्ट्कम्पेयर्ड (The subject compared)
उपमान	मुशब्बह बिही	दी आबजेक्ट विद विच दी कम्पैरीज़न इज़ मेड। (The object with which the comparis n is made)
वाचक	हर्फ़ तशबीह	दी वर्ड इम्प्लाईंग् कम्पैरीज़न (The word implying comparison
धर्म	वजह तशबीह	दी कामन् ऐट्रीब्यूट (The common attribute)
लुप्तोपमा	तशबीह नामुकम्मल	इन्कम्प्लीट सिमिली (Incomplete Simile)

[२]—मालोपमा

दो०—जहँ एकै उपमेय के बरनै बहु उपमान ।
भिन्न अभिन्नहु धर्म तें मालोपमा बखान ॥

विवरण—जहाँ एक उपमेय के बहुत से उपमान कहे जायँ, वहाँ मालोपमा अलंकार होता है। यह दो प्रकार का होता है—(१) भिन्नधर्मा (२) एकधर्मा।

(भिन्नधर्मा मालोपमा)

जहाँ अनेक उपमानों के पृथक पृथक धर्मों के वास्ते उपमा दी जाय। जैसे—

सवैया—

तेज निधानन में रबि ज्यों छबिवंतन में बिधु ज्यौं छबि छाजै
सैलन में ज्यौं सुमेरु लसै वर वृच्छन में कलपद्रुम राजै।
देवन में मतिराम कहै मघवा जिमि सोहत सिद्ध समाजै
राउछतासुत भाऊ दिवान जहान के राजन में इमि राजै

दो०—मरकत से दुतिवंत हैं रेशम से मृदु बाम।
निपट महीन सुतार से कच काजर से स्याम॥

बंदौं खल जस सेस सरोषा। सहस बदन बरनै परदोषा।
पुनि प्रणवौं पृथुराज समाना। पर अघ सुनै सहस दस काना
बहुरि शक्र सम बिनवौं तेही। संतत सुरानीक हित जेही।

दो०—सफरी से चञ्चल घने मृग से पीन सुऐन।
कमलपत्र से चारु ये राधेजू के नैन॥

(एकधर्मा मालोपमा)

जहाँ सब उपमानों का एक ही धर्म कथन किया जाय वा अनुमान कर लिया जाय।

हिमवंत जिमि गिरिजा महेसहिं हरहिं श्री सागर दई॥
तिमि जनक रामहिं सिय समरपी विश्व कल कीरति नई॥
जिमि भानु बिनु दिन, प्रान बिनु तनु, चन्द्र बिनु जिमि यामिनी॥
तिमि अवध तुलसीदास प्रभु बिनु, समुझि धौं जिय भामिनी।
वैनतेय बलि जिमि चह कागू। जिमि शश चहै नाग अरि भागू॥
जिमि चह कुशल अकारण कोही। सुखसंपदा चहै शिवद्रोही॥
लोभी लोलुप कीरति चहई। अकलंकिता कि कामी लहई॥
हरिपद विमुख परमगति चाहा। तस तुम्हार लालच नरनाहा।

कवित्त—सारद सो, सेस सो, सुधा सो, सक्रसिंधुर सो,

सुरसरिता सो, सूर ससि सो बखान है। हंसन सो हीरन सो, हिम सो, हलायुध सो, हरगिरि, हास्य हू सो, जपत जहान है। भनत 'मुरार' घनसार सदंयन हू सो पारद सो, पय सो, पिनाकी सो, प्रमान है। आज युद्ध-जीत-जस तखत महीप तेरो दीप दीप दीपै दीपमालिका समान है।

सवैया—भृगुनन्द कुठार सी, वासव वज्र सी......।
त्रिपुरारि त्रिशूल सी श्रीपति चक्रसी 'बंक' कहै बड़वानलसी।
नरसिंहनखाली सी खेत में काली सी सेस मुखानल की झल सी।
तरवार तिहारिय मान महीपति है विकराल हलाहल सी।
सारद नारद पारद अंग सी छीर तरंग सी गंग की धार सी।
शंकर शैल सी चंद्रिका फैल सी सारस रैलसी हंसकुमार सी।
'दास' प्रकास हिमाद्रि विलाससी कुंदसी काँससी मुक्तिभँडारसी।
कीरति हिन्दु नरेश की राजती उज्वल चारु चमेली के हारसी।

इन्द्र जिमि जंभ पर बाड़व सु अंभ पर रावग सदम्भ पर रघुकुल राज है। पौन बारिवाह पर शम्भु रतिनाह पर ज्यों सहस्र बाह पर राम द्विजराज है। दावा द्रुमदुण्ड पर चीता मृग झुन्ड पर 'भूषण' वितुण्ड पर जैसे मृगराज है। तेज तिमिरंस पर कान्ह जिमि कंस पर त्यों मलेच्छ बंस पर सेर सिवराज है।

शक्र जिमि शैल पर अर्क तम फैल पर बिघन की रेल पर लम्बोदर लेखिये। राम दसकंध पर भीम जरासंध पर 'भूषन' ज्यौं सिंधुर पै कुंभज विसेषिये। हर ज्यौं अनंग पर गरुड़ भुजङ्ग पर कौरव के अंग पर पारथ ज्यों पेखिये। बाज ज्यों विहंग पर सिंह ज्यौं मतङ्ग पर म्लेच्छ चतुरंग पर सिवराज देखिये।

(समुच्चयोपमा)

कोई कोई कबि 'समुच्चयोपमा' नाम का एक और भी अलंकार मानते हैं, जिसका लक्षण यह है कि उपमेय और उपमान

की समता कई एक धर्मों के कारण की जाय। जैसे—"चम्पक कलिका सी अहै रूप रङ्ग अरु बास"। यहाँ एक ही उपमेय (किसी नायिका) की समता एकही उपमान (चम्पककलिका) से रूप रङ्ग और बास तीन धर्मों के कारण की गई है।

पुनः—बहुवर्णा सहज प्रिया तमगुणहरा प्रमान।
जगमारग-दरसावनी सूरज-किरन समान॥

३—(रसनोपमालंकार)

दो०—कथित प्रथम उपमेय जहँ होत जात उपमान।
ताहि कहैं रसनोपमा जे जग सुकबि प्रधान॥

विवरण—कई एक उपमालङ्कारों की एक शृंखलाबद्ध श्रेणी को, जिसमें क्रमशः प्रथम कहा हुआ उपमेय उपमान होता जाता है, रसनोपमा कहते हैं।

(उदाहरण)

दो०—मति सी नति, नति सी बिनति बिनती सी रति चारु।
रति सी गति, गति सी भगति तो में पवनकुमारु॥

बंस सम बखत, बखत सम ऊँचो मन, मन सम कर, कर सम करी दान के (पुनः-) मुकुर सम विधु, विधु सरिस मुख, मुख समान सरोज।

सवैया—न्यारो न होत बफारो ज्यों धूम तें, धूम ज्यौं जात घने घन में मिलि। 'दास' उसास मिलै जिमि पौन में, पौन ज्यौं पैठत आँधिन में पिलि। कौन जुदो करे लोन ज्यौं नीर में, नीर ज्यौं छीर में जात खरो खिलि। यौं मति मेरी मिली मन मेरे सों, मो मन गो मनमोहन सों मिलि।

दो०—बच सी माधुरि मूरती, मूरती सी कल कीर्ति।
कीरति लौं सब जगत में छाय रही तव नीति॥

पुनः-शुभ स्वरूप के सम सुमति, सुमति सरिस गुन ज्ञान।
सुगुन ज्ञान सम उद्यमहु उद्यम से फल जान॥

४—(अनन्वयोपमा)

दो०—जहाँ होय उपमेय को उपमेयै उपमान।
तहाँ अनन्वय कहत हैं जे जन परम सुजान॥

बिवरण—जहाँ उपमान के अभाव के कारण एकही बस्तु उपमेय और उपमान दोनों का काम दे, वहाँ अनन्वयालङ्कार होगा।

उ०—(१)—लही न कतहुं हारि हिय मानी।
इन सम ये उपमा उर आनी॥

(२)—उपमा न कोउ कह दास तुलसी कतहुं कवि कोबिद लहैं।
बल विनय विद्या शील शोभा सिन्धु इन सम यइ अहैं॥

(३)—मिली न और प्रभा रती करी भारती दौर।
सुन्दर नंदकिशोर से सुन्दर नन्दकिशोर॥

(४)—निरवधि गुण निरुपम पुरुष भरत भरत सम जानि।

(५)—स्वामि गुसाइहि सरिस गुसाईं। मोहिं समान मैं स्वामि दोहाई।

(६)—श्री रघुनाथ प्रताप लौं भूपर श्री रघुनाथ प्रतापकी लाली।

(७)—मैथिली सी तिहुँ लोकन में मिली मैथिली की शुभ सुन्दरताई।

(८)—राम से राम, सिया सी सिया सिरमौर बिरंचि बिचारि सँवारे।

५—(उपमेयोपमा)

दो०—उपमा लागै परसपर सो उपमा उपमेय।

बिवरण—जहाँ उपमेय के लिये केवल, एकही उपमान हो,

तीसरी सदृश वस्तु का अभाव हो, वहाँ 'उपमेयोपमा' अलंकार कहा जायगा। जैसे—

१—वे तुम सम तुम उन सम स्वामी।

२—तो मुख सो ससि सोहत है वलि सोहत है ससि सो मुख तेरो।

३—भूपर भाऊ महीपति को मन सो कर औ कर सो मन ऊंचो।

४—लक्खन राम कलाधरसे सो कलाधर लक्खनराम सो सोहै॥

५-दो०—सुधा संत के बैन सम, बैन सुधा सम जान।
बैन खलन के विषहि से, विष खल बैन समान॥

(सवैया)-अंबरगंगसी हैं सरजू, सरजू सम गंग छटा नभ साजै।
यौं लछिराम सुदेव से सेवक, सेवक से शुभदेव समाजै॥
सोहैं सुरेश से राम नरेश, सुरेशहु राम नरेश सो राजै।
औधपुरी अमरावती सी, अमरावती औधपुरी सी विराजै॥

सूचना—ये ऊपर लिखे हुए पांचो अलंकार उपमा ही के भिन्न भिन्न भेद हैं। प्राचीन कवियों ने उपमा के और भी अनेक भेद माने हैं, पर उनमें कोई विशेष बिलक्षणता नहीं है।

उपमा अलंकार ही कविता का प्राण और कवियों का पुष्ट आधार है। आगे के अनेक अलंकारों में भी 'उपमा' ही प्राणवत् अंतर्हित रहैगी। इसलिये इनमें उपमेय और उपमान के लिये जो शब्द लिखे जायेंगे वे केवल पर्याय मात्र होंगे। उन्हें यहीं समझ लेना चाहिये।

उपमेय = { वर्ण्य, प्रस्तुत }, उपमान = { अवर्ण्य, अप्रस्तुत }

(६) ललितोपमा

दो०—जहँ समता को दुहुन की लीलादिक पद होत।
ताहि कहत ललितोपमा सकल कविन के गोत॥ (भूषण)

विवरण—जहाँ उपमेय और उपमान की समता जताने के लिये सम, समान, लौं, इव, तुल्य इत्यादि पद न लाकर ऐसे पद लाये जाते हैं जिनसे उपमेय और उपमान में बराबरी, मुकाबला, मित्रता, ईर्षा इत्यादि सूचक भाव प्रगट होता है उसे 'ललितोपमा' कहते हैं।

दो०—बहसत, निदरत, हँसत, अरु छबि अनुहरत बखानि।
शत्रु, मित्र, अरु होड़ कर, लीलादिक पद जानि॥

विवरण—जहाँ बहसत, हँसत, निदरत, छबि अनुहरत, शत्रु है, मित्र है, होड़ लगी है इत्यादि या इसी अर्थ के अन्य शब्द उपमेय और उपमान की बराबरी प्रगट करने के लिये आते हैं, वहाँ ललितोपमा समझना चाहिये। जैसे:—

कवित्त—साहि तनै सरजा शिवा की सभा जा मधि है मेरुवारी
सुर की सभा को निदरति है। भूषन भनत जाके एक
एक शिखर ते केते धौं नदी नद की रेल उतरति है।
जोन्ह को हँसति जोति हीरा मनि मंदिरन कंद..।
छबि कुहू की उछरति है। ऐसो ऊँचो दुरग महाबल
को जामें नखतावली सों बहस दिपावली [illegible]ति है।

सवैया—उत स्याम घटा इत हैं अलकैं बकपांति उतै इत मोती लरी। उत दामिनि दंत चमंक इतै उत चांप इतै भ्रुववंक धरी॥ उत चातक तो पिउ पीउ रटै बिसरै न इतै पिउ एक घरी। उत बूंद अखंड इतै अँसुवा बरसा विरहीनि तें होड़ परी।

सूचना—इसी को केशवदास ने 'संकीर्णोपमा' कहा है और उदाहरण यों दिया है—विधु कैसो बन्धु, किधौं चोर हास्य रसको कि कुंदन कौ बादी किधौं मोतिन को मीत है॥......किधौं केशोदास रामचन्द्र जू को गीत है।

यहाँ रामजी के यश की 'स्वेतता' दरसाने के लिये विधुको बन्धु, हास्यरसका चोर, कुन्दन को बादी (मुद्दई) और मोती

का मित्र कहा है। इसी प्रकार का कथन 'ललितोपमा' कहलाता है क्योंकि ऐसे कथनों से एक प्रकार की समता ही प्रगट होती है।

(७) प्रतीप ❋

सूचना—'प्रतीप' शब्द का अर्थ है 'उलटा'। अलंकार शास्त्र में इसका अर्थ लिया जाता है "उपमा के अंगों का उलटफेर" उपमा अलंकार में जिस तरह उपमेय को उपमान के समान कहते हैं, ठीक उसके प्रतिकूल इस अलंकार में उपमान को उपमेय के समान कहते हैं। ऐसा करने से उपमेय की उत्कृष्टता, उपमालंकार की अपेक्षा कुछ और अधिक बढ़ जाती है। यही इस अलंकार का तात्पर्य है। प्राचीनों ने इस अलंकार के पाँच प्रकार माने हैं। यथाः—

(पहला प्रतीप)

दो०—जहँ प्रसिद्ध उपमान को पलटि करिय उपमेय।
[illegible]सों प्रथम प्रतीप कबि बर्णत बुद्धि अजेय॥

सवैया—पायन से गुललाला जपादल पुंज वँधूक प्रभा [illegible]थरे हैं। हाथ से पल्लव नौल रसाल के लाल प्रभाव प्रकाश [illegible] हैं॥ लोचन की महिमा सी त्रिवेनी लखे लछिराम त्रितापहरै [illegible] हैं। मैथिली आनन से अरविंद कलाधर आरसी जानि परै हैं॥

[illegible]०—तो पद से अनुमानि, अरुण अमल कोरे कमल।
याही ते सनमानि, अवतंसित मोहन करे॥

[illegible]०—बिदा किये बटु बिनय करि फिरे पाय मन काम।
उतरि नहाये जमुनजल जो शरीर सम श्याम॥

इन उदाहरणों पर विचार करने से प्रत्यक्ष जान पड़ता है

❋ इस अलंकार को फारसी, अरबी, तथा उर्दू में 'तशबीह माकूस' कह सकते हैं।

कि पैर, हाथ, लोचन मुख और शरीर (वा शरीर का रंग) जो उपमा अलंकार में उपमेय माने जाते, वे यहाँ उपमान हो गये हैं और गुललाला, जपादल, बंधूक, रसालपल्लव, त्रिबेणी कमल और जमुनाजल जो उपमा में उपमान ठहराये जाते, यहाँ उपमेय हो गये हैं। यही 'उपमा के अंगों का उलट फेर' है।

(दूसरा प्रतीप)

दो० -जहाँ होय उपमान सों उपमेय को अमान।
तहँ दूसरो प्रतीप है नव प्राचीन प्रमान॥

विवरण-उपमेय से उपमान को कुछ बढ़कर जताना।
(इस अलंकार में सूरदास का यह पद बहुत अच्छा है)
पद-नंदनँदन के बिछुरे अँखियाँ उपमा योग्य नहीं।
कंज खंज मृग मीन नहोहीं कविजन वृथा कहीं॥
कंज होति मुँदि जाति पलक में जामिनी होत जहीं।
खंज होम उड़िजात छिनक में शीतमं जित तितहीं॥
मृग होतीं रहतीं निसिवासर चन्दबदन ढिग ही।
रूप सरोवर ते बिछुरे कहु जीवत मीन कहीं॥
बरवा-गरबु करौ रघुनन्दन जिन मन माहँ।
देखो आँखिन मूरति सिय कै छाँहँ॥

दो०-महाराज रघुराज जू कीजत कहा गुमान।
दण्ड कोष दलके धनी सरसिज तुमहिं समान।

बरवै-का घूँघुट मुख मूँदौ अबला नारि।
चंद सरग पै सोहत यहि अनुहारि॥

(तीसरा प्रतीप)

दो० -जहँ बरनत उपमेय तेँ कछु हीनो उपमान।
तहँ तीसरो प्रतीप है कबिजनं करो प्रमान॥

विवरण–जहां उपमेय की अपेक्षा उपमान में कुछ लघुता वर्णन की जय।

श्री रघुवीर सिया छवि सामुहैं स्याम घटा बिजुरी पर फीकी।

करत गर्व तू कल्पतरु बड़ी सो तेरी भूल।
या प्रभु की नीकी नजर तक तेरेही तूल॥
कुलिशहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहु चाहि।
चित खगेश रघुनाथ कर समुझि परै कहु काहि॥

मान महीपति के मन आगे लगे लघु काँकर सो कनकाचल।

[चौथा प्रतीप]

दो०–सरवरि में उपमेय की जब न तुलै उपमान।
चौथो भेद प्रतीप को तहँ बरनै मतिमान॥

उ०-बहुरि विचार कीन मनमाहीं। सीयबदन सम हिमकर नाहीं

दो०–तो मुख ऐसो पंकसुत अरु मयंक यह बात।
बरनै सदा अमंक कवि बुद्धि रंक विख्यात॥
तुव मुख के सम ह्वै सकत कहा विचारो चन्द।

पुनः—कोटि काम उपमा लघु सोऊ।

(पांचवां प्रतीप)

दो०–उपमेय के मुकाबिले व्यर्थ होय उपमान।
पंचम भेद प्रतीप को ताहि कहत गुनवान॥

दो०–या भूषण के जानिये वाचक कितक, निकाम।
मंद, वृथा, कछु नहिं, कहा, मिथ्या निफल, गुलाम॥

[उदाहरण]

दो०—अमियझरत चहुँ ओर सो नयनताप हरि लेत।
राधा जूको वदन अस, चन्द उदय केहि हेत ॥
दो०—प्रभा करन तमगुनहरन, धरन सहसकर राजु।
तव प्रताप ही जगत में कहा भानु सों काजु ॥
दो०—जहँ राधा आनन उदित निसिवासर सानंद।
तहाँ कहा अरविंद है कहा बापुरो चंद ॥
(व० तिलका) याको प्रताप यश लोक है प्रकाश ही।
हैं ये वृथा करत चित्त जवै जवै ही।
धाता प्रभाकर निशाकर के तवै हो।
रेखा करे चहुँ य मंडल व्याज तै ही।
दो०—जव जब जसवँत तेज जस विंचना लेत जु देख।
व्यर्थ समुझि रवि शशि करत, कुंड लेमिस परिवेख।
पुनः— कल्पवृक्ष केहि काम को जव हैं नृप जसवंत।

(८)—रूपक ❀

दो०—उपमान रु उपमेय तें वाचक धर्म मिटाय।
एकै कै आरोपिये सो रूपक कबिराय ॥
दो०—जो काहू के रूप इव रूप बनावै और।
रूपक ताहीसों कहैं सबै सुकवि सिरमौर (मुरारिदान)
कहुँ कहिये यह दूसरो कहुँ राखिये न भेद।
अधिक, हीन, सम त्रिविध पुनि ते तद्रूप अभेद।

❀ नोट —अंगरेजी में इस अलंकार को मेटैफर (Metaphor) और फारसी तथा उर्दू में तलाजमा कहते हैं।

विवरण–पूर्णोपमालंकार में से वाचक और धर्म को मिटाकर उपमेय पर ही उपमान का आरोप करैं अर्थात् उपमेय और उपमान को एक ही मानलें, यही रूपक अलंकार होगा। इस अलंकार के पहले दो भेद–(१) तद्रूप और (२) अभेद। फिर प्रत्येक के तीन तीन प्रकार (१) अधिक (२) हीन और (३) सम होते हैं, इस तरह पर इसके ६ प्रकार हो जाते हैं।
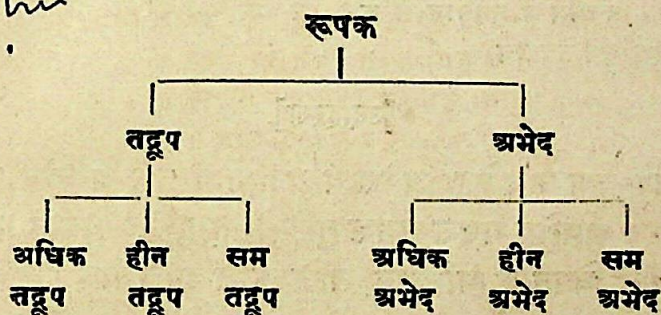
१–[तद्रूप रूपक]

जहां उपमान को उपमेय रूप करके बर्णन करैं वहां तद्रूप रूपक है। इसमें बहुधा अपर, दूसरा, अन्य इत्यादि शब्द वाचक होकर आते हैं

[अधिक तद्रूप रूपक]

जहां उपमेयमें उपमान से कुछ गुण बढ़कर हो, तोभी तद्रूप ही कहैं।

दो०–जस धुज वा धुजते अधिक तीन लोक फहरात।
धर्ममित्र बड़ मित्र ते मरत जियत सँग जात ॥

यहां यश को ध्वजा ही करके वर्णन किया है, और धर्म को मित्र ही करके, परन्तु यश रूपी ध्वजा में यह अधिक गुण कहा कि वह तीनों लोकों में फहराता है (साधारण ध्वजामें यह गुण नहीं) और धर्ममित्र में यह अधिकता है कि वह मरने के अनन्तर भी साथ देता है (जो साधारण मित्र नहीं कर सकता)

पुनः—मुख शशि वा शशि ते अधिक उदित ज्योति दिन राति।

[हीन तद्रूप रूपक]

उपमेय में उपमान से कुछ गुण कम होने पर भी दोनों को एक रूप ठहरावें

[उदाहरण]

दो०—अपर धनेश जनेश यह नहिं पुष्पक आसीन।
छितिय गणेश सुवेश शुचि सोहत शुंड विहीन॥
विप्रन के मन्दिरन तजि करत आँच सब ठौर।
भाउ सिंह भूपाल को तेज तरणि यह और॥

बरवा—दुइ भुज के हरि रघुवर सुन्दर भेस।
एक जीभ के लछिमन दूसर सेस॥

दो०—भिरत फिरत जहँ तहँ कहो मानत नहिं बदफैल
यह अजान है दूसरो बिन विषाण को बैल॥

दो०—हौ समदृष्टी शंभु तुम जग जाहर जसवंत।
हौ ब्रह्मा मुख चारि बिन भरुपति विश्व वदंत॥

दो०—तुव अरि नारिन के लिये सुनु जसवंत महीप।
बन ओषधियां होति हैं बिन कज्जल के दीप॥

(कवित्त)

साहि तनै सिवराज भूषण सुजस तव विगिर कलंक चंद उर आनियतु है। पंचानन एकही वदन गनि तोहि गजबदन गजानन विना बखानियतु है। एक सीसही सहससीस कला करिबे को दोई दृग सों सहसदृग मानियतु है। दोई कर सों सहसकर मानियत तोहि दोई बाहुसों सहसबाहु जानियतु है।

[सम तद्रूप रूपक]

नैन कमल ये ऐन हैं और कमल केहि काम।

सवैया–छाँह करैं छिति मंडल को सब ऊपरयों मतिराम भये हैं।
पानिप को सरसावत है सिगरे जग के मिटि ताप गये हैं।
भूमि पुरन्दर भाऊ के हाथ पयोदन ही सुकाज ठये हैं।
पंथिन के पथ रोकिवे को नभ बारिद वृन्द वृथा उनये हैं।

दो०–रच्यौ बिधाता दुहुन लैसिगरी शोभा साज।
तू सुन्दरि शति दूसरी यह दूजो सुरराज॥

पुनः–अपर रमा ही मानियत तोहिं साध्वी गुणवति।

२-(अभेद रूपक)

उपमेय और उपमान की अभेदता सूचक रूपक को 'अभेद रूपक' कहते हैं। (तद्रूप रूपक में अपर, दूसरो, और, अन्य अथवा भिन्नता सूचक कोई शब्द कहकर केवल तद्रूपता प्रगट कीजाती है ,जैसा कि उदाहरणों से स्पष्ट है। इस अभेद रूपक में ऐसा नहीं किया जाता , वरन उपमान को ठीक उपमेय का रूपही मानकर वर्णन करते हैं।

(अधिक अभेद रूपक)

जहां उपमेय में उपमान से कुछ अधिक गुण दिखलाकर एक-रूपता स्थापित की जाय ,वहां यह अलंकार होता है। यथा–

सवैया—जंगमें अंग कठोर महा मदनीर झरै झरना सरसे हैं।
भूलन रंग घने, मतिराम, महीरुहफूलि प्रभान फँसे हैं।
सुन्दर सिंदुर मंडित कुम्भन गैरिक शृंग उतंग लसे हैं।
भाउ दिवान उदार अपार सजीव पहार करी बकसे हैं॥

यहां हाथी को पहाड़ माना है, पर इतना अधिक कहा है कि ये हाथी 'सजीव, पहाड़ हैं। (पहाड़ निर्जीव बस्तु है)।

पुनः—दो०—तव मुख में अरु चंद में कछू भेद न लखाय।
एक बगैर कलंक के, तुव मुख जानो जाय॥

पुनः-नव विधु विमल तात यश तोरा। रघुवर किंकर कुमुद चकोरा
उदित सदा अथइहि कबहूं ना। घटहिं न जगनभ दिनदिन दूना॥

पुनः—रन वन घूमै तुव भुज लतिका पै चढ़ी कढ़ी म्यान बाँबी ते विषम विष भरी है। जा अरि को डसै सो तो तजै प्राण ताही छिन गारडू अनेक हारे झारे ते न झरी है॥ भनत 'कविंद राउ बुद्ध अनिरुद्ध तनै जुद्ध वीरता सों एक तैं ही बस करी है। तरल तिहारी तरवार पन्नगी को कहूँ तंत्र है न मंत्र है न जंत्र है न जरी है।

(हीन अभेद रूपक)

जहां उपमेय में उपमान से कुछ कमी दिखला कर भी रूपक बांधा जाय। यथा—

दो० महा दानि याचकन को भाऊ देत तुरंग।
पच्छन बिगर बिहंग हैं सुंडन बिगर मतंग॥
कलियुग सतयुग सो कियो खल दलस कल सँहारि
भुवन भरण पोषण करत द्वैभुजधर दनुजारि॥

सबके देखत व्योम पथ गयो सिन्धु के पार।
पच्छिराज बिन पच्छ को बीर समीरकुमार॥
पुनः—है राधे तू उरबसी, धरे मानुषी देह।

(सम अभेद रूपक)

जहां उपमेय और उपमान की पूर्णरूप से एकरूपता वर्णन की जाय। यथा—

राम कथा सुन्दर करतारी। संसय बिहँग उड़ावनहारी॥
कामना आठहु जाम फलै कलपद्रुम राम नरेश हमारे।

दो॰-नारि कुमुदिनी अवध सर रघुबर विहर दिनेश
अस्त भये विकसित भई निरखि राम राकेश॥
सम्पति चकई भरत चक मुनि आयसु खेलवार।
तेहि निसि आश्रम पींजरा राखे भा भिनसार॥

सूचना—वास्तव में सच्चा और शुद्ध रूपक यही है।

(विवरण)

अर्थ निर्णय, न्यायशास्त्र और व्याकरण के अनुसार तो रूपक के यही छः भेद हैं जो ऊपर कहे गये। परंतु वर्णन प्रणाली के अनुसार इन्हीं सब रूपकों के केवल तीन प्रकार कहे जा सकते हैं, अर्थात् (१) सांग (२) निरंग और (३) परंपरित।

(१) 'सांग' रूपक वह कहलाता है, जिसमें कवि उपमान के समस्त अंगों का आरोप उपमेय में करता है, जैसे—

पद—देखो माई सुन्दरता को सागर।
बुधि विवेक बल पार न पावत मगन होत मन नागर॥१॥
तनु अति श्याम अगाध अंबु निधि कटि पट पीत तरंग।
चितवतचलतअधिकछबि उपजतभँवर परत सब अंग॥२॥

नैन मीन मकराकृत कुंडल, भुजबल सुभग भुजंग।
मुकुतमाल मिलि मानो सुरसरि द्वै सरिता लिये संग ॥३॥
मोर मुकुट मणिगण आभूषण कटि किंकिणि नख चंद।
मनु अडोल वारिधि में बिंबित राका उड्गण वृन्द ॥४॥
बदन चंद्र मंडल की सोभा अवलोकत सुख देत।
जनु जलनिधि मथि प्रगट किया शशि श्री अरु सुधा समेत
देखि सरूप सकल गोपी जन रहीं विचारि बिचारि।
तदपि 'सूर' तरि सकीं न शोभा रही प्रेम पचि हारि ॥५॥

यहां सूरदास ने श्री कृष्ण की छबि में समुद्र का रूपक सांगोपांग बांधा है। इसी प्रकार तुलसीदास ने 'विनयपत्रिका' में काशीपुरीके लिये काम धेनुका सांगरूपक बाँधा है, जिसका आरंभ यों है:- सेइय सहित सनेह देह भरि कामधेनु कलि-कासी"। तुलसीदास ने अपने 'रामचरितमानस' (रामायण) में बालकाण्डमें मानसरोवरका रूपक, लंकाकांडमें 'बिजय रथ' का रूपक और उत्तर कांड में 'ज्ञानदीपक' और 'मानसरोग' का सांग रूपक बहुत ही अच्छा कहा है। पाठकों को समझ लेना चाहिये।

(सूरसागर से)

नँदनंदन वृन्दावनचंद

यदुकुल नभ तिथि द्वितिय देवकी प्रगटे त्रिभुवन बंद ॥१॥
जठर कुहूने बहिर वारिनिधि दिशि मधुपुरी स्वछंद।
बसुदेव शंभु शीश-धरि आने गोकुल आनँद कंद ॥२॥
ब्रज प्राची राका तिथि जसुमति सरस सरद ऋतु नंद।
उड़गण सकल सखा संकर्षण तम दनुकुल जो निकंद ॥३॥
गोपी गन तहँ धरि चकोर गति निरख मेटि पल द्वंद।
सूर, सुदेस कला षोड़स परिपूरन परमानंद ॥ ४ ॥

सूचना—इस 'सांगरूपक' को अँगरेजी में सस्टेन्ड मेटैफर (Sustained metaphor) कहते हैं

सांगरूपक के पुनः दो प्रकार हैं:—

(१) समस्तवस्तु विषयक (२) एकदेश-विवर्तित।

१—समस्तवस्तुविषयक सांगरूपक के उदाहरण कई एक ऊपर लिख आये हैं। कुछ और लिखते हैं —यथा:—

१—उदित उदयगिरि मंच पर रघुवर बाल पतंग।
विकसे संतसरोज सब हरषे लोचन भृङ्ग॥
नृपन केरि आशा निसि नासी। बचन नखत अवली न प्रकासी॥
मानी महिप कुमुद सकुचाने। कपटी भूप उलूक लुकाने॥
भये बिशोक कोक मुनि देवा। बरषहिं सुमन जनावहिं सेवा॥

२—रामनाम नरकेसरी कनक कशिपु कलिकाल।
जापक जन प्रहलाद जिमि पालहिं दलि सुरसाल॥

३—वर्षाऋतु रघुपति भगती तुलसी शालि सुदास।
रामनाम वर वरण युग सावन भादौंमास॥

२—'एकदेशविवर्तित रूपक' वह कहलाता है जिसमें कुछ अंगों का रूपण किया जाता है और कुछ का नहीं—जैसे:—

नाम पहरुवा दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निजपद जंत्रित प्राण जाँहि केहि बाट॥

यहां नाम ध्यान और लोचन का रूपक पहरू, कपाट और यंत्र (ताला) से किया गया है, किन्तु 'प्राण' का रूपक जो कैदी (बंदी) से होना चाहिये था नहीं किया गया—अर्थ-कर्ता अपनी बुद्धि से लगा लेता है।

(२) निरंग रूपक वह कहलाता है जिसमें केवल उपमान के प्रधान गुण का आरोप उपमेय पर किया जाता है। जैसे—

दो०—अवसि चलिय बन रामपहँ भरत मंत्र भल कीन्ह।
शोक सिन्धु बूड़त सबहिं तुम अवलम्बन दीन्ह॥

यहां शोक को समुद्र रूप से मान लिया है, उसके और अंग नहीं कहे गये। इसीप्रकार और भी जानो। यथाः—

(१) तुलसिदास यह बिपति-बांगुरो तुमहिंसो बनै निबेरे।
यहां 'विपत्ति' पर बाँगुर (जाल) का आरोप है।
(२) महामोह मृगजल-सरिता महँ बोरयो हौं बारहिंबार।
यहां 'मोह' पर मृगजल-सरिता का आरोप है।

३-(परंपरित रूपक)

वह कहलाता है जहां मुख्य रूपक का हेतु एक और ही रूपक होता है अर्थात् मुख्य रूपक एक और (अंतर्गत) रूपक पर निर्भर होता है जैसेः—

सुनिय तासु गुण ग्राम जासु नाम अघखग-बधिक।

यहां श्री राम 'नाम' पर 'बधिक' होने का आरोप किया गया, परन्तु ऐसा क्यों किया गया? इसलिये कि पहले "अघ" पर 'खग' होने का आरोप कर चुके हैं-अर्थात्, रामनाम' के बधिक होने की सिद्धि के लिये पहले ही अघ को खग कह डाला है, नहीं तो रामनाम पर बधिक का आरोप न हो सकता इसी प्रकार और भी जानो। यथा—

१—सुनु गिरिराजकुमारि भ्रम तम रविकर बचन मम।
२—बन्दौं रघुपति करुणा निधान। जाते छूटे भवभेद ज्ञान।
(क) रघुवंश-मुकुद-सुखप्रद-निशेश। सेवित पद पंकज अज महेश
(ख) निज भक्त हृदय पाथोज-भृंग। लावन्य बपुष अगनित अनंग।
(ग) अतिप्रबल मोह-तम-मारतंड। अज्ञान-गहन-पावक-प्रचंड।
(घ) अभिमान-सिन्धु-कुम्भज उदार। सुररंजनभंजन भूमिभार।
(ङ) रागादि सर्पगणपन्नगारि। कंदर्प-नाग-मृगपति मुरारि।

(च) भवजलधि-पोत चरणार विन्द। जानकी रमण आनंदकंद।
(छ) हनुमंत प्रेम वापी-मराल। निष्काम-कामधुकगो दयाल।
(ज) त्रैलोक्य तिलक गुणगहनराम। कहतुलसिदासविश्रामधाम

इस पद में क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, सब में परंपरित रूपक है।

(पुन)

(क) मोह महा घन-पटल-प्रभंजन। संशय-विपिन-अनल सुररंजन
अगुण सगुण गुणमंदिर सुंदर। भ्रमतम प्रवल प्रताप दिवाकर
(ख) काम क्रोध-मद-गज पंचानन। बसहु निरंतरजनमनकानन।
बिषय मनोरथ पुंज कंज–बन। प्रवल तुषार उदार पार मन।

यह परंपरित-रूपक–कभी कभी श्लेष से भी कहा जाता है। जैसेः—

(१) शंकर मानस राजमराला।

यहां जब तक 'मानस, शब्द में श्लेष न माने, और उसके दो अर्थ (१) मन (२) मानसरोवर न लें, तब तक रूपक का चमत्कार नहीं भासैगा।

(२) अंगद तुही बालिकर बालक। उपजेउ बंश अनल कुल-घालक। इसमें जबतक 'वंश, शब्द के,श्लेष से दो अर्थ, (१) बांस(२)कुल, न लियेजायें, तब तक कोई चमत्कार नहीं भासता।

सूचना –कभी कभी कवि लोग निरंग रूपक को मालाकार भी वर्णन करते हैं। यथा–

बिधि के कमंडलु की सिद्धि है प्रसिद्ध यही हरिपदपंकज प्रताप की लहर है। कहै 'पद्माकर' गिरीश शीशमंडल की मुंडन की माल ततकाल अघहर है। भूपति भगीरथ के रथ की सुपुन्यपथ जन्हु जपयोगफल फैल को फहर है। छेम की

छहर गंगा ! रावरी लहर कलिकाल को कहर जमजाल को जहर है ॥

यहां गंगाजीकी 'लहर' पर अनेक आरोप हैं और वे सब निरंग हैं।

(९)—परिणाम

दो० करै क्रिया उपमान ह्वै उपमेय को स्वरूप ।
अलंकार परिणाम तहँ बरणैं कविकुलभूप ॥

बिवरण—उपमेय द्वारा की जानेवाली क्रिया का उपमान द्वारा किया जाना कहा जाय। इसी को परिणाम अलंकार कहते हैं। परिणाम का अर्थ यहां पर 'स्वभाव का बदलना' है। जैसे—

"करकमलन धनु शायक फेरत"

यहां 'कर' के उपमान 'कमल द्वारा' 'धनुशायकफेरना' जो वास्तव में कर द्वारा होना चाहिये, वर्णित है।

पुनः दो०—सोन जुही कहुं कहुं जुही कहूं जाति के जाल ।
हरे हरे कर कमल सों फूलन बीनति बाल ॥

पुनः—अपने कर-कंज लिखी यह पाती।

दो०—पदपंकज ते चलत बर करपंकज लै कंजु ।
मुखपंकज तें कहत हरि बचन रचन मुद मंजु ॥

पुनः—सागर श्री रघुनंदन के कर–कंज सों मानिकमोतिझलौ करैं

पुनः—मुखशशि हरत अँधार।

(१०)—उल्लेख *

परिभाषा—किसी निमित्त से एक व्यक्ति का बहुविधि वर्णन 'उल्लेख' कहलाता है। इसके दो भेद हैं।

(१) एकहिं बहु बहु विधि लखैं।
(२) एकहिं बरणि बहु रीति ॥

* इस अलंकार को फारसी तथा उर्दू में "तन्सीकुलसिफ़ात" कहते हैं।

विवरण--(१) एक ही व्यक्ति को बहुत से भिन्न भिन्न व्यक्ति भिन्न भिन्न विधि से लखैं, कहैं वा मानैं वहां प्रथम उल्लेख। यथाः—

सवैया-दुर्जन भानु प्रचंड लखैं नृप सेवक ते ससि पूरन जानैं।
मूरतिवंत मनोज कहैं बनिता बसि होत रु रीझैं सुजानैं॥
मानैं कवीन्द्र सुरद्रुम सो रु गिरापति कै सब पंडितमानैं
आवत देखि कै रामनरिंद को भांतिन भांति निरूप बखानैं

पुनः

जिनके रही भावना जैसी। प्रभुमूरति देखी तिन तैसी।
देखहिं भूप महा रणधीरा। मनहु बीर रस धरे शरीरा।
डरे कुटिल नृप प्रभुहिं निहारी। मनहु भयानक मूरति भारी।
रहे असुर छल छोनिप वेषा। तिन प्रभु प्रगट काल सम देखा।
पुर बासिन देखे दोउ भाई। नर भूषण लोचन सुखदाई॥
विदुषन प्रभुविराट मय दीसा। बहु मुख कर पग लोचन सीसा॥
जनक जाति अवलोकहिं कैसे। सजन सगे प्रिय लागहिं जैसे॥
सहित विदेह विलोकहिं रानी। शिशुसम प्रीति न जाय बखानी॥
योगिन परम तत्त्व मय भासा। शांत शुद्ध मन सहज प्रकासा॥
हरिभगतन देखे दोउ भ्राता। इष्टदेव सम सब सुख दाता॥
रामहिं चितव भाव जेहि सीया। सोसनेह सुख नहिं कथनीया॥
इहि विधि रहा जाहि जसभाऊ। तेहि तस देख्यो कोसलराऊ॥

(२) एकही व्यक्ति को एकही ब्यक्ति बहु विधि वर्णन करै। यथा—

दो०—साधुन को सुख दानि है दुर्जन गन दुखदानि।
बैरिन विक्रम हानि प्रद राम तिहारे पानि॥

सवैया—सत्य की वेर युधिष्ठिर है बल भीमहै युद्धधरा महँगाजै।
बाण विलास में जानो विजै निकुलै इव बाजिनकी गत साजै॥

आगम जानिबे को सहदेव लखे सबके मनभावते छाजै।
पोषकता जगकी हरि है लखि 'कूरमराम' नरिंद बिराजै॥

कवित्त

सारमाला सत्य की विचार माला वेदन की भारीभाग-
माला है भगीरथ नरेश की। तपमाला जन्हु की सु जपमाला
जोगिन की आछी आपमाला है अनादि ब्रह्म वेश की। कहै
पद्माकर प्रमाणमाला पुन्यन की गंगाजू की धारा मानमाला
है धनेश की। ज्ञानमाला गुरु की गुमान माला ज्ञानिन की
ध्यानमाला ध्रुव मौलि माला है महेश की।

पुनः—सब गुन भरा ठकुरवा मोर। अपनै पहरू अपनै चोर॥

(११)—स्मरण

दो०कछु लखि, कछु सुनि, सोचि कछु, सुधि आवै कछु खास।
सुमिरन ताको भाषिये बुधवर सहित हुलास॥

विवरण—यद्यपि प्राचीन आचार्यों ने इस अलंकार की परिभाषा ऐसी लिखी है किः—

"सदृश वस्तु लखि सदृश की सुधि आवै जेहि ठौर।
सुमिरन भूषन तेहि कहैं सकल सुकवि सिरमौर" ॥

परन्तु हिन्दी सहित्य में हमें ऐसे उदाहरण मिलते हैं जिनसे जान पड़ता है कि प्राचीनों का यह लक्षण पर्याप्त नहीं है। इसी से हमने इस अलंकार की नवीन परिभाषा गढ़ी है। कारण यह है कि या तो इसको अलंकार ही न मानना चाहिये, या अगर अलंकार मानना ही है तो केवल सदृश वस्तु को देखकर सदृश वस्तु की सुधि आने ही में क्यों माना जाय? सब दशाओं में क्यों न माना जाय? पहले देखी हुई वस्तु का स्मरण कई भांति से हो सकता है। जैसे—

१–कछु लखि–(समानगुणवाली वस्तु को देखकर स्मरण)
उ०प्राचीदिसिशशिउग्योसोहावा। सियमुखसरिसदेखिसुखपावा
पुनः–लखि शशि मुख की होत सुधि तन सुधि घन को जोहि।
पुनः–वीच बासकरि यमुनहि आये। निरखिनीरलोचनजलछाये।
दो०–रघुवर बरण बिलोकि बर बारि समेत समाज।
होत बिरह बारिध मगन चढ़े बिवेक जंहाज॥

(संबंधी वस्तु को देखकर स्मरण)

दो०–सघन कुंज छाया सुखद सीतल मंद समीर।
मन ह्वै जात अजौं वहै वा जमुना के तीर। (बिहारी)
शूल होत नवनीत निहारी। मोहन के मुख जोग बिचारी॥
(यशोदा वचन ऊधव प्रति)

(स्वप्न देखकर स्मरण)

उ०–जागि परी तो न कान्ह कहूं, न कदंबकी छाँह नहीं जमुनातट।
दो०–देखों जागि तबै सखी सांकर लगी कपाट।
कित ह्वै आवत जात धौं को जाने केहि बाट॥
(कभी कभी बैधर्म्य दर्शन से भी स्मरण होता है) यथाः—
ज्यौं ज्यौं इत देखियत मूरुख विमुख लोग त्यौं त्यौं ब्रज-बासी सुखरासी मन भावै है। खारे जल छीलर दुखारे अंध-कूप देखि कालिन्दी के कूल काज मन ललचावै है। जैसी अब बीतत सो कहतै ना बनै बैन 'नागर' ना चैन परै प्राण अकु-लावै है। थूहर पलास देखि देखि कै बबूर बुरे हाय हरे हरे वे तमाल सुधि आवै है।

(नागरीदास)

२-कछु सुनि—

उ०—सुनि कोकिल ध्वनि बचन की आवत है सुधि मोहिं।

पुनः—कहा कहिये 'पिय' बोलि पपीहा व्यथा जिय की पुनि देत जगाय।

(चर्चा वा कथा सुनकर स्मरण)

एक समय कृष्ण को सोलाते समय यशोदा ने कथा कहना आरंभ किया। विधिवशात रामावतार की कथा कहने लगी। कथा कहते कहते जब 'सीताहरण' का प्रसंग कहा तब बालरूप कृष्ण को पूर्वावतार का स्मरण आया और अचानक चौंककर बोले "लक्ष्मण! लाना तो मेरा धनुष बाण"। इस बात को कवियों ने अच्छी अलंकारिक भाषा में वर्णन किया है। यथा—

इकदिन महरि श्याम को लैकै। परी पलँगपर तकिया दैकै॥
लागी कहन कथा सुखदाई। जिमि अवतार लीन रघुराई॥
बाल बिनोद बिवाह उछाहू। बिपिन गवन भूपतिकर दाहू॥
भरत सनेह लखन सेवकाई। कहि खरदूषण केरि लड़ाई॥
कह्यो जानकी केर हरण जब। "कहँ धनुशर" कहिकृष्णउठेतब॥

३-सोचि कछु-(कुछ सोच समझ कर, कुछ चिंतवन करके स्मरण)

उ० नृप उदार चिन्तन करत, आये जसवँत याद।

(मुरारिदान)

यहाँ उदार राजाओं का चिंतवन करने से जसवंतसिंह का स्मरण आया। कविराज भूषण ने जो उदाहरण अपने "शिवराज भूषण" में लिखा है, वह इस चिन्तवन का बहुत अच्छा प्रमाण है।

(भूषण लिखते हैं)

तुम शिवराज ब्रजराज अवतार आज तुमही जगत काज पोषत भरत हौ। तुम्हैं छोड़ि याते काहि विनती सुनाऊँ मैं तुम्हारे गुण गाऊँ तुम ढीले क्यों परत हौ। भूषण भनत वहि कुल में नयो गुनाह नाहक समुझि यह चित्तमें धरतहौ। और बाम्हनन देखि करत सुदामा सुधि मोहि देखि काहे सुधि भृगु की करत हो।

भूषण कहते हैं कि मुझे ब्राह्मण कुल में पैदा होने का नया गुनाह (पाप) आप लगाते हैं, और विष्णु का अवतार होने के कारण मुझपर आप नाराज होते हैं, क्योंकि भृगुजी ने विष्णुजी की छाती पर लात मारी थी।

कृष्ण का अवतार होने के कारण सुदामा की मित्रता का चिंतवन करके अन्य ब्राह्मणों को मानना और विष्णु का अवतार होने के कारण भूषण को भृगुवंशी जानकर उस समय की अकस निकालना क्या यह सब बातें बिना चिंतवन के हो सकती हैं। इस कारण चिंतवन (सोचि कछु) से भी स्मरणालंकार हो सकता है।

पाठकों को याद रखना चाहिये कि 'स्मृति' नामक एक 'संचारी' भाव भी होता है। उसमें भी गत वा विस्मृत वस्तुओं के स्मरण का ही वर्णन होता है। उस भाव और इस, अलंकार में भेद यह होता है कि जब वर्णन में 'रस' की पुष्टि हो तब तो वह स्मृति संचारी भाव होगी, जब अर्थ में चमत्कार आवै तब अलंकार माना जायगा।

(१२)–भ्रांति (भ्रम)

दो०–भ्रांति और की और में निश्चित जब अनुमान।
भ्रांति, भ्रमालंकार तेहि कहैं सुकवि मतिमान॥

विवरण—भ्रम से किसी और वस्तु को कोई और वस्तु मान बैठना भ्रांति है। जैसे- "जो जेहि मन भावै सो लेहीं। मणि मुख मेलि डारि कपि देहीं"।

यहाँ नाना वर्ण की मणियों को देखकर नानावर्ण के फलों का भ्रम होता है। फल समझ कर मुख में डाल लेते हैं पर जब वह फूटती नहीं तब उगल देते हैं।

पुनः—सो०—कपि कर हृदय बिचार दीन मुद्रिका डारितब।
जानि अशोक अँगार सीय हरषि उठि कर गह्यो॥

यहाँ जानकी जी श्री रामचन्द्रको स्वर्णमुद्रिका को अशोक प्रदत्त अंगारा समझती हैं।

पुनः—चहुँ गा तेरे सुयश की रूरी राशि निहारि।
फिरि फिरि टोवत जटनि हर गिरि गंगा की धार॥

दो०—पांय महावरदेन को नाइन बैठी ।
फिरि फिरि जानि महावरी एँडी मीड़त जाय॥

(शकुन्तला कहती है)

सो०—री सखी मोहिं बचाय, या मतवारे भ्रमर सों।
डसो चहत मुख आय, भरम भरो बारिज गुने॥

पुनः—जानि श्यामघन घन तुम्हैं, नाचि उठैं बन मोर।
चितै रहत मुख ओर निशि, निश्चल चखन चकोर॥
परत भ्रमर शुकतुंड पर, भ्रम धरि कुसुम पलास।
शुक ताको पकरन चहत, जंबूफल की आस॥

(१३)—सन्देह

दो०—बहु बिधि वर्णत वर्ण्य को नियत न तत्थ्य अतत्थ्य।
अलंकार सन्देह तहँ बरनत हैं मतिपत्थ्य॥

विवरण—जहाँ किसी वस्तु को देख कर संशय बना ही रहै, निश्चय न हो। 'भ्रांति' में एक वस्तु पर निश्चय जम जाता है, संदेह में किसी पर नहीं जमता। धौं, किधौं, कीधौं, की, कि, या अथवा इत्यादि संदेह-सूचक शब्द इस अलंकार के वाचक हैं। जैसे:—

की तुम तीन देव महँ कोऊ। नर नारायण की तुम दोऊ॥
पुनः—की तुम हरिदासन महँ कोई। मोरे हृदय प्रीति अति होई॥
की तुम राम दीन अनुरागी। आये मोहि करन बड़भागी॥

(कवित्त)

पाय अनुसासन दुसासन के कोप धायो द्रुपदसुता को चीर गहे भीर भारी है। भीषम करण द्रोण बैठे व्रतधारी तहाँ कामिनी की ओर काहू नेक ना निहारी है। सुनि कै पुकार धायो द्वारका ते यदुराई बाढ़त दुकूल खैंचे भुजबल हारी है। सारी बीच नारी है कि नारी बीच सारी है कि सारी ही की नारी है कि नारी ही की सारी है।

पद—ये कौन कहाँ ते आये। मुनि सुत किधौं भूप बालक किधौं ब्रह्म जीव जग जाये। रूप जलधि के रतन, सुछबितिय लोचन ललित लला ये। किधौं रविसुवन, मदन ऋतुपति किधौं, हरिहर वेष बनाये। किधौं आपने सुकृत सुरतरु के सुफल रावरे पाये। (गीतावली)

यह अलंकार फारसी अरबी तथा उर्दू के 'तजाहुल आरिफ' नामक अलंकार से मिलता जुलता है।

(१४)—अपन्हुति

दो०—मिथ्या कीजै सत्य को सत्य जु मिथ्या होत।
आपन्हुति षट भेद को बरतन हैं कबि गोत॥

१ २ ३ ४ ५ ६
शुद्ध, हेतु, परजस्त, भ्रम, छेका, कैतव देखि।
'ना' बाचक है पांच को कैतव को 'मिस' लेखि ॥

विवरण–'अपन्हुति' शब्द का अर्थ है 'छिपाना'। इस लिये इस अलंकार में किसी बात का छिपाना और कोई अन्य बात कहके दूसरे का संतोष कर देना यही वर्णन रहता है। इसके ६ भेद हैं जिनमें से प्रथम पाँच में निषेधवाची 'न' 'नहीं' का प्रयोग अनिवार्य है और अंतिम 'कैतवापन्हुति' में 'मिस' शब्द का प्रयोग अवश्य ही होता है। बस इन्हीं बाचक शब्दों से इस अलंकार की ठीक पहचान हो जाती है।

१–(शुद्धापन्हुति)

दो०–दुरै सत्य उपमेय को प्रगट करै उपमान।
शुद्धापन्हुति कहैं तेहि जे कविंद मतिमान ॥

विवरण–उपमेय को असत्य ठहराकर उपमान का स्थापन किया जाय, वही शुद्धापन्हुति अलंकार है। जैसेः—

मैं जु कहा रघुवीर कृपाला। बन्धु न होय मोर यह काला।
यहाँ सत्य बन्धुत्व को असत्य ठहराकर उपमानरूपो असत्य कालत्व का स्थापन किया है।

पुनः–पहिरे श्याम न पीतपट घनमें बिज्जु विलास।
पुनः–सारद ससि नहि सुन्दरी उदयो जस जसवंत।
अंक न संग रही जु लगि भिच्छुक जन की पंत।
पुनः–नहिं सुधांशु यह है सखी नभगङ्गा को कंज।

(सवैया)–ये न घने घन कुञ्जरमाल हैं, या चपला न दिपैं तरवारी। गर्जनि नाहिं नगारे बजैं, बकपांति नहीं गजदन्त निझारी। ये न मयूर जो बोलत हैं बिरदावलि बन्दि बदैं जस भारी। या नहि पावसकाल अली यह तो सति है अमरेशसवारी।

सूचना-याद रखना चाहिये कि यह अपन्हुति अलंकार कई एक अन्य अलंकारों से मिलकर भी आता है। उदाहरणार्थ देखो 'सापन्हवोत्प्रेक्षा' और 'सापन्हवातिशयोक्ति'।

२-(हेत्वापन्हुति)

दो०-शुद्धापन्हुति में जहां कहिये हेतु बनाय।
हेतु अपन्हुति कहत हैं ताहि सकल कविराय॥

विवरण-शुद्धापन्हुति में जब कोई कारण भी बतला दिया जाय, तब वही हेत्वापन्हुति हो जायगी। जैसेः—

दो०-रात मांझ रवि होत नहिं, ससि नहिं तीव्र सु लाग।
उठी लखन अवलोकिये, बारिधि सों बड़बाग॥

यहाँ चन्द्रमा को देखकर रामचन्द्र कहते हैं, हे लक्ष्मण देखो तो यह चन्द्रमा नहीं है क्योंकि इसकी किरण तीव्र जान पड़ती है, और रात्रि में सूर्य का होना असंभव है इससे यह सूर्य भी नहीं है, अतः यह समुद्र से निकलती हुई बड़वाग्नि ही है।

यदि केवल इतनाही कहा जाता कि "यह चन्द्रमा नहीं है बड़वाग्नि है" तो शुद्धापन्हुति होती। चन्द्रमा के निषेध का कारण "तीव्र लगता है" भी कहा गया है, अतः हेत्वापन्हुति है। इसी प्रकार 'सूर्य नहीं है' इसका कारण भी कि 'रात्रि है' बतलाया गया है। इसी प्रकार और भी समझना। यथा—

सवैया-सेत सरीर हिये विष श्याम कला फन री मनि जानु जुन्हाई। जीभ मरीची दसौदिसि फैलती काटत जाहि वियोगन ताई। सीस ते पूछि लौं गात गस्यो पै डसे बिन ताहि परै न कलाई। संस के गोत के ऐसहि होत हैं चन्द नहीं या फनिन्द है माई।

दो०—शिव सरजा के कर लसै सो न होय किरवान।
भुज भुजँगेश भुजंगिनी भखति पौन अरि प्रान॥

३—(पर्यस्तापन्हुति)

दो०—धर्म और में राखिये धर्मी साँच छिपाय।
पर्यस्तापन्हुति कहैं ताहि सकल कविराय॥

विवरण—(पर्यस्त=फेंका हुआ) किसी वस्तु में उसके सच्चे धर्म का निषेध इस लिये किया जाय कि वह धर्म किसी दूसरी वस्तु में आरोपित करना है। यथाः—

है न सुधा यह, है सुधा, संगति साधु समाज।

यहाँ 'सुधा' में सुधात्व (अमरत्वगुण) का निषेध इस लिये किया गया कि उसका धर्म साधुसमाज की संगति में स्थापित करना मंजूर है।

पुनः—नहीं शक्र सुरपति अहैं, सुरपति नन्दकुमार।
रतनाकर सागर न है, मथुरा नगर बजार॥

पुनः—यह न चाँदनी चाँदनी मृदु बिहँसनि नँदलाल।

पुनः—मीन में नहिं प्रीत सजनी चातकहिं नहिं प्रेम।
एक मति गति एक व्रत, यह भरत ही में नेम॥

सो०—कालकूट विष नाहिं, बिष है केवल इंदिरा।
हर जागत छकि वा हि, यहि सँग हरि नींद न तजत॥

सूचना—प्रायः देखा जाता है कि इस अलंकार के उदाहरणों में जिस वस्तु के सच्चे धर्म को छिपाना होता है उसे दो बार लाना पड़ता है। उदाहरणों में देखो—सुधा, सुरपति, चांदनी और विष शब्द दो दो बार आये हैं।

४ (भ्रांत्यापन्हुति)

दो०—भ्रम संका मन और के कछु कारण ते होय।
दूरि करै कहि सत्य सो, भ्रांत्यापन्हुति सोय॥

यथा—कहप्रभुहँसिजनिहृदय डराहू। लूक न अशनि न केतु न राहू ये किरीट दशकन्धर केरे। आवत बालि तनय के प्रेरे॥

दो० बेसर मोती दुति झलक, परी अधर पर आय।
चूनो होय न चतुर तिय, क्यों पट पोंछो जाय॥

दो०—आली लाली लखि डरपि, जनि टेरहु नँदलाल।
फूले सघन पलास ये, नहिं दावानल ज्वाल॥

५—(छेकापन्हुति)

दो०—शंका नासै और की सांची बात दुराय।
छेकापन्हुति कहत हैं ताहि कविन के राय॥

विवरण-(छेक = चतुराई) यह अलंकार भ्रांत्यापन्हुति का ठीक विरोधी है। उसमें सत्य कह कर भ्रम दूर किया जाता है और इसमें सत्य को छिपाकर असत्य बातें कह कर शंका दूर करने की चेष्टा की जाती है (चाहे वह शंका दूर हो वा न हो)। जैसे:—

साँवरो सलोनो गात पीत पट सोहत सो अंबुज से आनन पै परै छबि ढरकी। मन्त्र ऐसी जंत्र ऐसी तंत्र सी तरकि परै हँसनि चलनि चितवनि त्यौं सुघर की। गोकुल कहत बन कुञ्जन को बासी लखे हाँसी सी करतु है री काम कलाधर की। एतने में बोली और मिले हरि सुखदानी? नाहीं मैं कहानी कही राम रघुबर की।

यहाँ कोई गोपी कृष्ण की छवि का वर्णन कर रही थी, एक अन्य स्त्री ने आकर पूछा कि क्या तुझे कृष्ण मिले थे, तब वह सत्य बात (कृष्णदर्शन) को छिपाकर कहती है कि नहीं मैं तो राम की कथा कह रही थी।

पुनः—कछु न परीक्षा लीन्हगुसाईं। कीन्ह प्रणाम तुम्हारिहि नाईं।

सूचना—'मुकरी' इसी अलंकार में कही जाती हैं। जैसे:—

१–अर्द्ध निशा वह आयो भौन। सुन्दरता वरनैं कवि कौन।
निरखत ही मन भयो अनन्द। क्यों सखि साजन? नहिं सखि चंद
२–शोभा सदा बढ़ावनहारा। आँखि न ते छिन करूँ न न्यारा
आठ पहर मेरो मन रञ्जन। क्यों सखि साजन? नहिंसखि अञ्जन

६–(कैतवापन्हुति)

दो० मिस व्याजादिक शब्द दै, कहै आन को आन।
ताहि कैतवापन्हुती, भूषण कहैं सुजान॥

(यथा)

पठै मोहमिस खगपति तोहीं। रघुपति दीन बड़ाई मोहीं॥
लखी नरेश बात यह साँची। तियमिस मीचु शीश पर नाची॥

सवैया-लालिमाश्रीतरवानिकेतेजमें शारदालोंसुखमाकीनिसेनो।
नूपुर नीलमनीन जड़े जमुना जगै जौहर में सुखदेनी।
यौं लछिराम छटा नख नौल तरंगिनीगंग प्रभा फल पैनी।
मैथिली के चरणाम्बुज व्याज लसै मिथिला मग मंजु त्रिवेनी

छन परभा के छल रही चमकि मार करवार।
बीरबधू के व्याज री दहकत आजु अँगार॥

सूचना–इस अलंकार में मिस, छल, ब्याज बहाना इत्यादि शब्दों का लाना आवश्यक है। जिस वस्तु के बहाने जो बस्तु कथन की जाती है, इन दोनों में कारण और कार्य का सा अथवा उपमेय उपमान कासा सम्बन्ध भी होना जरूरी है। 'पर्यायोक्ति' से इसका अन्तर समझ लेना चाहिये। पर्यायोक्ति अलंकार की सूचना पेज १३२ में देखिये।

(१५)–उत्प्रेक्षा

सूचना–उत्प्रेक्षा (उद्+प्र+ईक्षन) शब्द का अर्थ है "बलपूर्वक प्रधानता से देखना"। इस अलंकार का मुख्य तात्पर्य "किसी उपमेय का कोई उपमान कल्पनाशक्ति द्वारा कल्पित कर लेना है" कल्पना प्रतिभा

के बल से ही हो सकती हैं। जितनी ही शक्तिरती प्रतिभा होगी उतनी ही उत्तम कल्पना हो सकैगी, इसलिये इस अलंकार को उत्प्रेक्षा कहते हैं। अतः उत्प्रेक्षा की परिभाषा हुईः—

दो०—बल सों जहाँ प्रधानता करि देखिय उपमान।
उत्प्रेक्षा भूषण तहाँ कहत सुकबि मतिमान॥

(वाचक)—मनु, जनु, मानो, जानो, निश्चय, प्रायः, बहुधा इव, खलु इत्यादि शब्द इस अलंकार के वाचक होते हैं।

उत्प्रेक्षालंकार तीन प्रकार का होता है (१) वस्तूत्प्रेक्षा, (२) हेतूत्प्रेक्षा और (३) फलोत्प्रेक्षा।

(१)—वस्तूत्प्रेक्षा

किसी वस्तु के अनुरूप बलपूर्वक कोई उपमान कल्पित किया जाय वहाँ वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार कहा जायगा। इसके दो प्रकार हैं (क) उक्तविषया—जहाँ उत्प्रेक्षा का विषय पहले कहाजाय, और तब उसके अनुरूप कल्पना की जाय।

(ख) अनुक्त विषया—जहाँ विषय न कहा जाय, केवल कल्पना की जाय।

(उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा)—यथाः—

दो०—सोहत ओढ़े पीत पट, स्याम सलोने गात।
मनो नीलमणि शैल पर आतप पर्‌यो प्रभात॥

यहाँ 'पीताम्बर ओढ़े कृष्ण का श्यामतनु" उत्प्रेक्षा का विषय है, सो पहिले कह दिया गया है, तब उत्प्रेक्षा की गई कि वह तनु कैसा है मानो नीलमणि का पर्वत है जिस पर प्रातः काल के सूर्य की किरणें पड़ रही हों।

यहाँ मुख्य तात्पर्य तो कृष्ण के तनु के वर्णन से है परंतु कवि अपनी कल्पना से पाठक का ध्यान बलपूर्वक खींचकर एक

नील मणि के पर्वत पर प्रातःकाल की सूर्य किरणों के [illegible] के दृश्य की ओर लिये जाता है। इस दृश्य के दिखलाने से कवि का तात्पर्य यह है कि पाठक (दर्शक) कृष्ण के तनु की उत्कृष्ट शोभा का अनुमान कर सकेगा। इसी प्रकार और भी समझ लेना चाहिये। कुछ और उदाहरण देखिये।

दो०—लता भवन ते प्रगट भे तेहि औसर दोउ भाइ।
निकसे जनु युग बिमल बिधु, जलद्पटल बिलगाइ॥

सवैया--शंभु सरासनतोरिलोमृणालसोभालविशालप्रताप सोहावै
त्यौं लछिराम स्वयंवर में मिथिलेश अनन्द अमात न छावै
रामगरे जयमाल के देत सु मैथिली यौं समता सरसावै॥
मानो रमा रतनाकर में रतनावली श्री हरिको पहिरावै॥

दोहा—सखि सोहति गोपाल के, उर गुंजन की माल।
बाहर लसत मनो पिये, दावानल की ज्वाल॥

सूचना—गोस्वामी तुलसीदासजी तथा कविशिरोमणि सूरदास जी ने राम जी तथा कृष्ण जी को बालछबि वर्णन में इस अलंकार का बहुत अधिक और बहुत उत्तम प्रयोग किया है। जैसे:—

१—लोचन नील सरोज से ऊपर मसिबिंदु विराज।
जनु विधुमुख छवि अमीको रक्षक राखे रसराज॥

२—शिशु सुभाव सोहत जब कर गहि बदन निकट पद पल्लव लाये। मनहु सुभग युग भुजँग जलज भरि लेत सुधा शशि सों सचु पाये।

३—बंधुक सुमन अरुण पदपंकज अंकुश प्रमुख चिन्ह बनि आये। नूपुर जनु मुनिवर कलहंसन रचे नीड़ दै बाँह बसाये।

४—भाल बिशाल ललित लटकन वर बालदशा के चिकुर

सुर ... मनु दोउ गुरु शनि कुज आगे करि शशिहिं मिलन तम के गण आये।

५–गजमणिमाल बीच भ्राजत कहि जात न पदिक निकाई।
जनु उड़गण बारिद मण्डल पर नवग्रह रची अथाई॥

६–मंजु मेचक मृदुल तनु अनुहरत भूषण भरनि।
जनु सुभग शृङ्गार शिशुतरु फलो अद्भुत फरनि॥

७–दो०–'पूरन' जमुना नीर पर यों आतप छबि होति।
मानहु कृष्ण शरीर पर पीतपटी की जोति॥

इन सब उदाहरणों में उत्प्रेक्षा के विषय पहले कह दिये गये हैं तब उत्प्रेक्षाएँ की गई हैं, इसलिये येउदाहरण उक्त विषया के हैं।

(अनुक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा)

जहाँ उत्प्रेक्षा का विषय कथन न करके उत्प्रेक्षा की जाय। जैसेः

१–अंजन बरसत गगन यह मानो अथये भानु।

यहाँ सूर्यास्त के अनन्तर "अंधकार का फैलना" जो उत्प्रेक्षा का विषय है वह पहले कहा नहीं गया परन्तु उत्प्रेक्षा की गई है कि मानो सूर्यास्त के अनन्तर यह आकाश काजल बरसाता है। ऐसे ही कथन को अनुक्तविषया जानो।

२–उदित सुधाधर करत जनु सुधामयी बसुधाहि।

यहाँ चंद्रोदय के अनन्तर जो "चाँदनी फैलती है" वही इसका विषय है, सो कवि ने कहा नहीं। उत्प्रेक्षा यह की कि चन्द्रमा उदय होकर मानो समस्त धरातल को सुधामय कर देता है (सुधा का रंग सफेद माना गया है)।

३–सरद ससी बरसत मनो घन घनसार अमंद।

यहाँ भी 'चाँदनी का प्रकाश' जो उत्प्रेक्षा का विषय है,

यह नहीं कहा गया, उत्प्रेक्षा यह की गई कि मानो शरद ऋतु का चन्द्रमा बहुत सा सफेद कपूर बरसाता है। चाँदनी की तरह कपूर का रंग भी स्वेत ही होता है।

४–मोर लौं मंजु नचैं धरती पर मंडित फेन लगाम उमाहैं।
कान के बीच लसैं कलँगी फिरी त्यौर तिरीछी अतूल अदा हैं।
काम कबूतर लौं लछिराम छलैं यों अटेरन की परमा हैं।
बाजि बली रघुबंसिन के मनौ सूरज के रथ चूमन चाहैं।

इसमें श्री राम जी की बरात के घोड़ों का वर्णन है। उनके तन की छवि वर्णन करके कवि कहता है कि 'वे घोड़े मानो सूर्य का रथ चूमना चाहते हैं," अर्थात् उछलने में बहुत ऊँचे तक उछलते हैं, परन्तु उनकी 'उछाल' जो इस उत्प्रेक्षा का मुख्य 'विषय' है कवि ने कही ही नहीं। इससे अनुक्त-विषया जानो। इसी प्रकार और भी समझ लो।

बरसै जनु काजल गगन, तम लिपटत सब गात।
दीठि नीच सेवा सरिस, विफल भई सी जात॥

सूचना–उपमा में दो वस्तुओं की समता वस्तुतः दिखलाई जाती है। उत्प्रेक्षा में केवल उस समानता का संभव संशय रूप से कहा जाता है।

(२)–हेतूत्प्रेक्षा

अहेतु को हेतु मानकर उत्प्रेक्षा की जाय, वहाँ हेतूत्प्रेक्षा समझो। इसके भी दो प्रकार हैं:-

(१) 'सिद्धास्पद'–अर्थात् उत्प्रेक्षा का आधार सिद्ध हो (संभव हो)।

(२) 'असिद्धास्पद'–अर्थात् उत्प्रेक्षा का आधार सिद्ध न हो (असंभव हो)।

(सिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा)

१–मनो कठिन आँगन चली ताते राते पायँ।

सुकुमार स्त्रियों के चरणों में ललाई स्वाभाविक की होती है, परन्तु कवि उसका हेतु कल्पित करता है कि मानो कठिन आँगन में चलने से वह ललाई आगई है।

स्त्रियाँ आँगन में चलती ही हैं। यह तो सिद्ध आधार है; अहेतु में हेतु की कल्पना की गई है, यही अलंकारता है।

२–रवि अभाव लखि रैनि में दिन लखि चंद बिहीन।
सतत उदित यहि हेतु जनु, यश प्रताप भुवि कीन॥

यहाँ भी रात में सूर्य का अभाव और दिन में चंद्रमा का अभाव सिद्ध आधार है, पर इन्हीं कारणों से कोई राजा पृथ्वी भर में अपना यश और प्रताप नहीं फैलाता (उसका कारण कुछ और ही होता है)

(कवित्त)

घोर निरधनता सुदामा घर वास कीन्हो दारुन कलेश दैदै दीन को सतायो है। सम्मति लै बाम की सिधायो द्विज श्याम पास भेट करि तंदुल अखंड धन पायो है। 'पूरन' जु मानो भई द्वारका गया की पुरी जाय विप्र जामें मन मानो फल पायो है। दारिद पिशाच मानि आखत निमन्त्रन को संग जाय तरि गो न फेरि भौन आयो है।

'गया' में तर जाना सिद्धास्पद हेतु है। दरिद्ररूपी पिशाच के लौट कर न आने का वही हेतु कहा गया है।

(असिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा)

जहां उत्प्रेक्षा का कथित हेतु असंभव हो। जैसेः—

१–मुख सम नहिं याते मनो चंदहिं छाया छाय।

राधिका के मुख के समान नहीं है, इससे मानों चंद्रमा में

छाया (काला दाग) छायी हुई है। यहाँ असिद्ध आधार कहा गया है अतएव असिद्धास्पद है।

२–पूस दिनन में ह्वै रहो, अगिन कोन में भानु।
मैं जानो जाड़ो बली, ते वह डरै निदानु॥

सूर्य का जाड़े से डरना असिद्ध आधार है। और डर के कारण सूर्य पूस में अग्नि कोण में (जाड़े से डरकर अग्नि तापने के लिये) चला जाता है, यह कारण ठीक नहीं।

३–तुव चख निरखि लजाय मनु किय बनवास मृगीन।
कुवलय रहत मलीन दिन रहे पैठि जल मीन॥

नेत्रों से मृगियों कुमुद पुष्पों तथा मीनों का लजाना, असिद्ध आधार है, और इसी लज्जा के कारण मृगी वन में रहने लगीं, कुवलय (कुईं के फूल) दिन में मलीन रहते हैं, और मछलियां पानी में डूबी रहती हैं, ये बातें भी ठीक नहीं।

४–मोर मुकुट की चंद्रकनि, यौं राजत नँदनंद।
मनु शशिशेखरकोअकस, किय शेखर सत चंद॥

५–दो०-भाल लाल बेंदी ललन आखत रहे बिराजि।
इन्दु-कला कुज में बसी, मनहु राहु भय भाजि॥

६-भुजन भुजँग सरोज नैनन बदन बिधुजीत्योलरनि।
बसे कुहरन सलिल नभ उपमा अपरदुरीडरनि॥

यहां "राम की भुजाओं से हारकर सर्प बिलों में रहने लगे' नेत्रों से हारकर कमल पानी में जा डूबे, और मुख से हारकर चंद्रमा आकाश में जा बसा और अन्य उपमा भी डरकर छिप रहीं" ऐसा कहा गया है।

इन उपमानों का हार जाना वा डर जाना 'असिद्ध आधार'

है और उपमानों के वहाँ २ रहने का कारण जो कल्पित किया गया है वह ठीक नहीं है, इसीसे 'असिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा' है।

(सूरसागर से)

उपमा हरि तन देख लजाने।
कोउ जल में कोउ बनहि रहे दुरि कोऊ गगन उडाने॥
मुख देखत शशि गयो अंबर को तड़ित दसन छबि हेरो।
मीन कमल कर चरन नयन डर जल मों कियो बसेरो॥
भुजा देखि अहिराज लजाने बिबरनि पैठे धाय।
कटि निरखत केहरि डरि मानो बन बिच रह्यो दुराय॥

३—फलोत्प्रेक्षा

अफल को फल मानने की उत्प्रेक्षा करना फलोत्प्रेक्षा है। इसके भी दो भेद हैं:—
१-सिद्धास्पद-जिसकी उत्प्रेक्षा का आधार सिद्ध हो (संभव हो)
२-असिद्धास्पद-जिसकी उत्प्रेक्षा का आधार असिद्ध हो (असंभव हो)।

(सिद्धास्पद फलोत्प्रेक्षा)

१ दोहा-मधुप निकारन के लिये, मानो रुके निहारि।
दिनकर निजकर देत है, सतदल दलनि उघारि॥

सूर्योदय से कमलों का खिलना सिद्ध आधार है, परन्तु कवि कल्पना करता है कि मानो रात भर बन्द रहे हुए भौंरों को बन्द से छुड़ाने के लिये सूर्य कमलों को अपने करों (किरणों) से खोल देता है। सूर्य का कमलों को खिलाना इसलिये नहीं होता कि उसमें बन्द रहे हुए भौंरे बन्द से छूट जावें, वरन् वह स्वयं सिद्ध विषय है। भौंरोंका बन्द से छूटना यह अफल है, उसे ही फल कल्पित किया है, अतः फलोत्प्रेक्षा है।

२-दुवन सदन सब के बदन, शिव शिव आठो जाम।
निज बचिवे को जपत जनु, तुरकौ हर को नाम॥ (भूषण)

शिव शिव कहने से मनुष्य संकटों से बच सकता है, यह (हिन्दूधर्मानुसार) सिद्ध आधार है। परन्तु मुसल्मान लोग इस फलप्राप्ति के लिये शिव शिव (शिवाजी का नाम) नहीं कहते थे, वरन् डर से बहुधा उनकी चर्चा किया करते थे, उस चरचा में उनका नाम बार बार लेना पड़ता था।

सवैया-मौज भयो मिथिलापुर में चतुरंग चमू सजिआई बरात है
त्यों उछले तें जवाहिर की लरैं टूटैं तुरंगन के लहरात है
लक्खनरामको यौं दसरत्थ लिये निजगोदन मोद अमात है
ताप मिटाइवेकेहितमानो पपीहरा स्वाती केबुन्दनहात है

(असिद्धास्पद फलोत्प्रेक्षा)

१-तो पद समता को कमल जल सेवत इक पांय।

कमल स्वतः जलमें रहता है राधिका के चरणों की समता रूपी फल की प्राप्ति के लिये नहीं। जड़ कमल में समता की इच्छा का होना असिद्ध आधार है। इसलिये यहां असिद्धास्पद फलोत्प्रेक्षा है।

२-दमयंती कचभार प्रभा से पिच्छभार हतप्रभानिहार।
कार्तिकेय की सेवा करता है मयूर खलु संयम धार॥

यहाँ मयूर में दमयंती के बालों की शोभा की समता प्राप्ति रूपी फलकीइच्छा का होना असिद्ध आधार है (सर्वथा असंभव है) और यह कहना कि उसी फल की प्राप्ति के लिये मयूर कार्तिकेय की सेवा करता है अफल को फल कल्पित करना है, यही असिद्धास्पद फलोत्प्रेक्षा है। इसमें खलु (निश्चय) उत्प्रेक्षा का वाचक है।

३-सवैया-बारि में बूड़िजवै रविकोसरि पंकजपायनकी गहिवेको।
वास उपास करैं वन में कटि की सरि सिंहिनियो चहिवेको।
... ...

रोज अन्हात है छीरधिमें ससि तो मुखकी समता लहिवेका।

ऊपर जितने उदाहरण दिये गए हैं उन सब में उत्प्रेक्षा वाचक शब्द मनो, जनो, खलु, मनु, जनु, इव, ध्रुव, इत्यादि मौजूद हैं। परन्तु कहीं कहीं बिना वाचक शब्द के भी उत्प्रेक्षा की जाती है। ऐसी उत्प्रेक्षा गम्योत्प्रेक्षा, गुप्तोत्प्रेक्षा वा ललितोत्प्रेक्षा कही जाती है।

सूचना-फलोत्प्रेक्षा और हेतूत्प्रेक्षा की पहँचान करना विद्यार्थियों के लिये तनिक कठिन बात है। इसकी जाँच के लिये सर्व प्रथम 'क्रिया' को जांचो! यदि क्रिया किसी हेतु से कही गई जान पड़े तो हेतूत्प्रेक्षा समझो, और यदि उस क्रिया से किसी फल की इच्छा प्रगट होती हो तो फलोत्प्रेक्षा समझो। नीचे लिखे उदाहरणों पर विचार करो—

१-राधिका जी के अधर और नासिका की छवि अनूप है, मानो बिंबाफल को देखकर लालच वश आकर शुक बैठा हो। (सिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा)

२-राधिका जी के अधर और नासिका की छवि अनूप है मानो विंबाफल का स्वाद लेने के लिये शुक चोंच मारना चाहता है। (सिद्धास्पद फलोत्प्रेक्षा)

३-श्रम से पसीने की बूंदे लटों द्वारा मुख पर गिर रही हैं, मानो चंद्र को राहु का सताया हुआ समझकर नागवृन्द उस पर अमृत बरसा रहे हैं। (असिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा)

४-मानो राहु-युद्ध-जनित पीड़ा दूर करने के लिये नागवृन्द चंद्रपर अमृत बरसा रहे हैं। (असिद्धास्पद फलोत्प्रेक्षा)

(गम्योत्प्रेक्षा)

दो०–तोरि तीरतरु के सुमन वर सुगन्ध के भौन।
जमुना तो पूजन करत वृंदाबन को पौन॥

पुनः–इनहि देखि विधिमन अनुरागा। पटतर योग बनावनलागा।
कीन्ह बहुत श्रम एक न आये। तेहि इरषा बन आनि दुराये॥
कह प्रभु गरल बंधु शशि केरा। अति प्रिय निज उर दीन्ह बसेरा।
इसी प्रकार और भी समझ लेना चाहिये।

सूचना–जानना चाहिये कि सब प्रकार की उत्प्रेक्षायें गम्योत्प्रेक्षा हो सकती हैं

(सापन्हवोत्प्रेक्षा)

कभी कभी अपन्हुति सहित उत्प्रेक्षा की जाती है, उसे 'सापन्हवोत्प्रेक्षा' कहते हैं। सब प्रकार की अपन्हुतियों से मिलाकर सब प्रकार की उत्प्रेक्षाओं के उदाहरण लिखें तो बड़ा बिस्तार होगा, इसलिये केवल एक उदाहरण लिखते हैं।

दोहा–कमलन कहँ तेहि मित्र गुनि मानहु हतिबे काज।
प्रविशहिं सर नहिं न्हान हित, रवितापित गजराज

यहाँ सूर्यताप से तापित गज का सरोवर में प्रवेश स्नानार्थ निषेध करके, तदनंतर सूर्य के मित्र जानकर कमलों का नाश करने के लिये उत्प्रेक्षा की गई है, अतः यह 'सापन्हव फलोत्प्रेक्षा है। इसी प्रकार सब उत्प्रेक्षाएं सापन्हव हो सकती हैं।

(१६)–अतिशयोक्ति*

दो०–जहँ अत्यन्त सराहिबो अतिशयोक्ति सु कहन्त।
भेदक, संबंधा, चपल, अक्रम, रूप, अत्यन्त॥

---

* इस अलंकार को अँगरेजी में, हाइपरबोली (Hyperbole) और फारसी तथा उर्दू में मुबालग़ा कहते हैं।

विवरण-जहां किसी की अतिशय सराहना करना मंजूर हो उस उक्ति के कथन में अतिशयोक्ति होती है। इसके छः भेद हैं-(१) भेदकातिशयोक्ति (२) संबंधातिशयोक्ति (३) चपलातिशयोक्ति। (४) अक्रमातिशयोक्ति (५) रूपकातिशयोक्ति और (६) अत्यन्तातिशयोक्ति।

१-भेदकातिशयोक्ति

दो०-औरे शब्दन को जहाँ उत्कर्षता सुवेस।
भेदक अतिशय उक्ति तहँ मानत सुकवि नरेस॥

'औरै औरै' शब्द इस अलंकार का वाचक है। जैसे-

दो०-औरै कछु बोलनि चलनि औरै कछु मुसुकानि।
औरै कछु सुख देत हैं सकैं न बैन बखानि॥

दो०-अनियारे दीरघ दृगनि किती न तरुणि समान।
वह चितवनि औरै कछू जेहि बस होत सुजान॥

(कभी कभी 'न्यारी रीति है, और ही बात है, 'अनोखी बात है' इत्यादि, या इसी अर्थ के और भी शब्द इस अलंकार के वाचक होते हैं)-जैसेः—

जगत को जैतवार जीत्यो अवरंगजेब न्यारी रीति भूतल निहारी शिवराज की। (भूषण)

दो०-अवलोकनि बोलनि हँसनि डोलनि औरै और।
आवनि मृदु गावनि सबै औरै वाके तौर॥

मंगलीक बदन विलास लछिराम औरै कलँगी मरोर मौर भाल सजवारे में। औरै आनि औरै बानि औरै चढ़ी सान भुज औरै धनुबान राम कर गजरारे में॥

दो०-औरै हँसनि विलोकिबो, औरै बचन उदार।
तुलसी ग्राम बधून के देखे रह न सँभार॥

२—सम्बन्धातिशयोक्ति

दो०—जहँ अयोग्य है योग्य में, जहँ अयोग्य में योग्य।

विवरण—सम्बन्धातिशयोक्ति के दो भेद हैं—(१) योग्य में अयोग्यता प्रकट कर के प्रस्तुत की अतिशय बड़ाई करना (२) अयोग्य में किसी के सम्बन्ध से ऐसी योग्यता दिखलाना कि अतिशय बड़ाई प्रगट हो।

(१) योग्य में अयोग्यता। जैसे:—

सान भरे भुज दण्ड अखण्ड तिहूं पुर मंडन मान भरै को ?
आँगुरी वे अलकेश धनी सनी मौजन में अनुमान अरै को ?
यौं नखप्रभा लछिराम लखे नखतावली के परमानै धरै को ?
श्री रघुनाथ के हाथन साँमुहे कल्पलता सनमान करै को ?

कल्पलता सम्मान करने योग्य वस्तु है पर उसे अयोग्य ठहराकर उसके सम्बन्ध से रामजी के हाथों की अतिशय उदारता प्रगट की गई है

पुनः—अति सुन्दर लखि मुख सिय तेरो। आदर हम न करत शशि केरो।

यहां शशि सम्मान योग्य होने पर भी मुख की अतिशय सुन्दरता वर्णन करने के हेतु अनादर पात्र ठहराया गया है।

कानन कुञ्ज प्रमोद बितान भरे फल फूल सुगन्ध विधानै।
बावली के अरविंदन पै मकरन्द मलिन्द सने शुभ गानै॥
त्यौं लछिराम तरंगन तें सरजू के कढ़े सुर साजि बिमानै।
औधपुरी महिमा यौं चितै अमरावती को हम क्यौं सनमानै ?

(२) अयोग्य में योग्यता। जैसे:—

फबि फहरैं अति उच्च निसाना। जिन महँ अटकत बिबुध-बिमाना।

विबुध-विमान अवश्यही बहुत ऊँचे पर होंगे। उनसे संबंध प्रगट करने से 'ध्वजा' में यह योग्यता हो गई कि उसकी ऊँचाई की अतिशयोक्ति होगई। विबुधविमान के सम्बन्ध से अत्यन्त ऊँचाई लक्षित हुई। पुनः

बासन बांस कठौती हुती औ फटी दुपटी जेहि बीतत सीवत। गोकुल छानी सरी गरी भीति रहे जित चूहन के गन जीवत। धाम सुदामैं लख्यौ हरि सों जेहि देखिये देखि दिग-स्पति भीवत। बैठि जितै गन चातक के घन ते बन चोंच चलाय कै पीवत।

इसमें चातक और घन के सम्बन्ध द्वारा यह प्रगट किया है कि सुदामा का मन्दिर बहुत ऊँचा था। कोई घर इतना ऊँचा नहीं होता, परन्तु यहां घन चातक के सम्बन्ध से अयोग्य घर में भी अतिशय ऊँचाई की योग्यता कथन की गई है।

सूचना—'संबंधातिशयोक्ति' का कविता में बहुत अधिक काम पड़ता है। इस अलंकार के बहुत प्रचलित उदाहरण यों कहे जाते हैं कि 'इसका वर्णन शेष, शारदा भी नहीं कर सकते, वेद भी नेति नेति कहता है। यथाः-

जेहि वर बाजि रामअसवारा। तेहि सारदौ न बरनै पारा।
शारद श्रुति शेषा ऋषय अशेषा जाकहँ कोउ नहिं जाना

दो०—जो सुख भा सिय मातु मन देखि राम वर भेष।
सो न सकहिं कहि कल्प शत सहस शारदा शेष॥

कोटिहु बदन नहिं बनै बरनत जगजननि शोभा महा।
सकुचहिं कहत श्रुति शेष शारद मन्दमति तुलसी कहा।

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि शेष, शारदा श्रुति इत्यादि को कथन के अयोग्य ठहरा कर उनके सम्बन्ध से प्रस्तुत वस्तु में अतिशयोक्ति की स्थापना की जाती है।

३-चपलातिशयोक्ति

दो०—कारण के लखतहि सुनत कारज आसुहिं होय।
चपला अतिशय उक्ति यह अलंकार है सोय॥

सवैया-पंचवटी के विहंग उमंग में बोलत बानी सुधारसघूटे।
त्यों लछिराम अदेव ललाट तें आयु की रेख के अंक वे छूटे।
आसुरी हाथन तें पल एक में भाग सोहाग के भाजन फूटे।
आगम श्री रघुनाथ सुने मुनि मंडली के मन—बंधन छूटे।

तब शिव तीसर नैन उघारा। चितवत काम भयो जरि छारा।
बिमल कथा कर कीन्ह अरंभा। सुनत नसाहिं काम मद दंभा।

दो०—आयो आयो सुनत ही शिव सरजा तुव नावँ।
बैरि नारिदृगजलन सों बूड़ि जात अरि गावँ॥

भूषन भनत साहि तनै शिवराज एते मान तव धाक आगे दिसा उबलति है। तेरो चमू चलिबे की चरचा चले ते चक्रवर्तिन की चतुरंग चमू बिचलति है।

४-अक्रमातिशयोक्ति

दो०—कारण अरु कारज जहाँ होत एक ही संग।
अक्रमातिशयउक्ति सो बरनत सुकवि सुढंग॥

संधान्यौ प्रभु बिशिष कराला। उठी उदधि उर अंतर ज्वाला।
पायन को जमुना उमहीं जल बाढ़ो जबै वसुदेव गरे लौं।
छूकत ही यदुनन्दन के जमुना जी बहीं तरवा के तरे लौं।

दो०—बाणासन ते रावरे बाण बिषम रघुनाथ।
दससिर सिर धर ते छुटे दोऊ एकहि साथ॥
उड्यो संग गजकर कमल चक्र चक्रधर हाथ।
कर ते चक्र सु नक्रसिर धरतें बिलग्यो साथ॥

उद्धत अपार तुव दुंदुभी धुकार साथ लंघै पारावार बाल-वृन्द रिपुगन के। तेरे चतुरंग के तुरंगन के रँगे रज साथ ही उड़ात रजपुंज हैं परन के। दक्खिन के नाथ शिवराज तेरे हाथ चढ़ैं धनुष के साथ गढ़ कोट दुरजन के। भूषन असीसैं तोहि करत कसीसैं पुनि बानन के साथ छूटैं प्राण तुरकन के।

सूचना–संग ही, साथ ही, एकै साथ, साथ अथवा इसी अर्थ का कोई शब्द इस अलंकार का वाचक जान पड़ता है।

५—रूपकातिशयोक्ति *

दो०—जहँ केवल उपमान कहि प्रगट करैं उपमेय।
रूपकातिशय उक्ति तहँ बरनत सुकवि अजेय।

विवरण–केवल उपमान कहके उपमेयों का अर्थ समझा जाता है, वहां यह अलंकार होता है। जैसेः—

"कनकलता पर चन्द्रमा धरे धनुष द्वै बाण"।

यहाँ कनकलता = कोई स्त्री। चन्द्रमा = मुख। धनुष = भौहैं। बाण = कटाक्ष।

ब्याह समय रामचन्द्रजी सीताजी के
सिर में सिन्दुर देते हैं।

राम सीय सिर सेंदुर देहीं। उपमा कहि न जात कबि केहीं।
अरुणपराग जलज भरि नीके। शशिहि भूष अहि लोभ अमी के।

यहाँ अरुणपराग = सेंदुर। जलज = शंख, वा कमल। शशि = सीताजी का मुख। अहि = रामजी का हाथ।

सूचना– सूरदास ने इस अलंकार में अनेक पद कहे हैं। उनमें से एक यह है। इसमें राधिका जी के समस्त अंगों का वर्णन है।

---

* इसको फारसी में "सनअत तअज्जब" कह सकते हैं।

पद-(राग सारंग)-अद्भुत एक अनूपम बाग। युगल कमल पर गज क्रीड़त है तापर सिंह करत अनुराग। हरि पर सरवर सर पर गिरिवर गिरि पर फूले कंज पराग। रुचिर कपोत बसै ता ऊपर ता ऊपर अमृत फल लाग। फल पर पुहुप पुहुप पर पल्लव तापर शुक पिक मृगमद काग। खंजन धनुष चन्द्रमा ऊपर ता ऊपर इक मणिधर नाग।

युगल कमल = दोनों चरण। गज = मंद चाल। सिंह = कटि। सरवर = नाभी। गिरिवर = कुच। कंज = मुख। कपोत = कंठ। अमृत फल = चिबुक। पुहुप = गोदना बिंदु। पल्लव = होंठ। शुक = नासिका। पिक = वाणी। मृगमद = कस्तूरीबिन्दु। काग = काकपक्ष, पाटी। खंजन = नेत्र। धनुष = भौहैं। चन्द्रमा = ललाट। मणिधरनाग = सीस फूल सहित गूंथी हुई वेणी।

(इसी प्रकार और भी समझना चाहिये)

पुनः-भूषन भनत देस देस बैरि नारिन में होत अचरज घर घर दुख दंद के। कनकलतानि इन्दु, इन्दु माहिं अरविंद, झरैं अरविंदन ते बुन्द मकरन्द के।

यहाँ कनकलता = स्त्रियां। इन्दु = मुख। अरविंद = नेत्र। मकरन्द बुन्द = आंसू।

रामायण में तुलसीदासजी ने रामचन्द्रजी के मुख से सीताजी के लिये कहलाया है:—

खंजन शुक कपोत मृग मीना। मधुप निकर कोकिला प्रवीना॥
कुंदकली दाड़िम दामिनी। शरद कमल शशि अहि भामिनी॥
बरुणपाश मनोज धनु हंसा। गज केहरि निज सुनत प्रशंसा॥
श्रीफल कमल कदलि हरषाहीं। नेकु न शंक सकुच मनमाहीं॥
सुनु जानकी तोहि बिनु आजू। हरषे सकल पाय जनु राजू॥

इसमें भी उपमानों द्वारा जानकी जी के अंगों को (उपमेयों को) सूचित किया है। जैसे:—

खंजन = नेत्र। शुक = नाक। कपोत = ग्रीवा। मृग, मीन = नेत्र। मधुप = बाल। कोकिला = वाणी। कुन्दकली = दंत। दाड़िम = दंत। दामिनी = मुसकानि। शरदंकमल, शशि = मुख। अहिभामिनी = वेणी। वरुण पाश = बाल (छूटे हुए)। मनोज धनु = भौंहैं। गज = चाल। केहरि = कटि। श्रीफल = कुच। कमल = हाथ। कदलि = जंघा।

कहने का तात्पर्य्य यह है कि जब तुम मेरे संग थीं तब ये सब उपमान तुम्हें देख २ कर लज्जित रहते थे। अब तुम्हारा हरण होजाने से ये सब प्रसन्न हुए हैं।

(सापन्हवातिशयोक्ति)

जहां अपन्हुति सहित रूपकातिशयोक्ति हो। जैसेः—

अहि शशि मंडल पै लसै, जिय पताल जिन जानु।

यहां मुखरूपी चंद्रमा पर वेणीरूपी सर्प का वर्णन है। उसे पताल में मत जानो कहकर अपन्हुति प्रगट की गई है।

सूचना—इस जगह हम सूरदास कृत दो तीन पद ऐसे लिखे देते हैं जिन को समझ लेने से इस अलंकार की सामग्री अच्छीं तरह से समझ में आजायगी। ये पद दानलीला के समय के हैं।

पद-लेहौं दान इनन्ह को तोसों। मत्त गयंद हंस तुम पैं हैं कहा दुरावति मो सों ॥ १ ॥ केहरि कनक कलस अमृत के कैसे दुरैं दुरावति। विद्रुम अहैं बज्र के किनका नाहिन हमैं दिखावति ॥ २ ॥ खग कपोत कोकिला कीर खंजन चंचल मृग जानति। मणि कंचन के चक्र जरे ते एते पर नहिं मानति ॥३॥ सायक चाँप तुरै बनिजति हो नितप्रति आवहु जाहु। दान दिये बिनु जान न पैही दिये न होय निवाहु ॥ ४ ॥ यह बनिजति वृषभानुसुता तुम हम सों बैर बढ़ावत। सुनहु सूर एतै पै कहति हैं हम धौं कहा लदावत ॥ ५ ॥

पद–यह सुनि चकित भईं ब्रजबाला। तरुणी सबै परसपर बूझ कहा कहत गोपाला ॥१॥ कहँ तुरंग कहँ गज केहरि कहँ हंस सरोवर सुनिये। कंचंन कलस गढ़ाये कब हम देखे धौं यह गुनिये॥२॥ कोकिल कीर कपोत बनहि में मृग खंजन एक संग। तिनके दान लेत हैं हम पै देखहु इनके ढंग॥ ३॥ चंदन और सुगंध बतावत कहाँ हमारे पास। सूर श्याम जी ऐसे दानी देखि लेहु हम पास॥ ४॥

पद–भूलि रहे तुम कहा कन्हाई। तिनको नाम लेत तुम आगे जे सपनेहु दृष्टि न आई॥ १॥ हयवर गयवर सिंह हंस खग मृग कहँ हैं हम लीन्हें। सायक चाप तुरी सुनि चक्रत चमर न देखे चीन्हें॥ २॥ चंदन और सुगन्ध कहत हौ कंचन कलस बतावहु। सूर श्याम ये सब जौ ह्वै हैं तबहिं दान तुम पावहु॥३॥

पद–प्रगट करौं अब तुमहि बताऊं। चिकुर चौंर, घूंघट हयवर बर, भ्रू सारंग दिखाऊँ॥१॥ बान कटाक्ष, नैन खंजनमृग नासा सुक उपमाऊँ। तरिवन चक्र अधर विद्रुम बर, दसन बज्रकन ठाऊँ॥२॥ ग्रीव कपोत, कोकिला वानी, कुच घट कनक समाऊँ। यौवन मद रस अमृत भरे हैं रूप रंग झलकाऊं॥ ३॥ अंग सुगंध वास पट अंबर गनि गनि तुमहिं सुनाऊँ। कटि केहरि, गयंद गति शोभा हंस सहित इक ठाऊँ॥ ४॥ फेर किये कैसे निबहोगी घरहि गये कहँ पाऊँ। सुनहु सूर यह बनिज तुम्हारे फिरि फिरि तुमहिं सुनाऊँ॥ ५॥

६ अत्यन्तातिशयोक्ति

दो०-जहां हेतु ते प्रथम ही प्रगट होत है काज।
अत्यन्तातिशयोक्ति तेहिं कहैं सकल कविराज॥

(यथा)

दोहा—हनूमान की पूंछ में लगन न पाई आग।
लंका सिगरी जरि गई गये निशाचर भाग॥
राजन ! राउर नाम यश सब अभिमत दातार।
फल अनुगामी महिपमणि मन अभिलाष तुम्हार॥

इसमें पहले 'फल' तदनन्तर मनोभिलाष वर्णन किया गया है।

कवित्त

मंगन मनोरथ के प्रथमहि दाता तोहिं कामधेनु कामतरु सो गनाइयतु है। याते तेरे गुन सब गाय को सकत कवि बुद्धि अनुसार कछु तऊ गाइयतु है। भूषन भनत साहि तनै सिवराज निज, बखत बढ़ाय करि तोहि ध्याइयत हैं। दीनता को डारि औ अधीनता बिडारि दीह दारिद को मारि तेरे द्वार आइयतु है।

दो० कवि तरुवर सिव सुजस रस सींचे अचरज मूल।
सुफल होत है प्रथम ही पीछे प्रगटत फूल॥
ग्राह ग्रहीत गयंद मुख कढ़न न पाई 'त्राहि'।
पहले ही हरि आय कै निज कर उधर्यो ताहि॥

धूमधाम ऐसी रामचन्द्र बीरता की मची, लछिराम रावन सरोष सरकस तें। बैरी मिले गरद मरोरत कमान गोसे, पीछे कढ़े बान तेजमान तरकस तें।

कह कपि मुनि गुरुदछिना लेहू। पीछे हमहिं मंत्र तुम देहू।

दोहा—पद पखारि जलपान करि आपु सहित परिवार।
पितर पार करि प्रभहिं पुनि मुदित गयो लैपार॥

(१७)—तुल्ययोगिता

दोहा-क्रिया और गुण करि जहां धर्म एकता होय।
चतुर चतुर विधि कहत हैं तुल्ययोगिता सोय॥

विवरण—क्रिया द्वारा अथवा गुण द्वारा जहाँ कई एक व्यक्तियों का एकही धर्म कथन किया जावै, वह तुल्ययोगिता है। यह चार प्रकार की होती है:—

(१)—पहली

वर्ण्यन को जहँ धर्म एक प्रथम कहत कवि लोग।

वि०—जहां अनेक उपमेयों का एक धर्म कथन किया जाय, वहां प्रथम तुल्ययोगिता जानो। यथाः—

१—गुरुरघुपतिसबमुनि मन माहीं। मुदित भये पुनि पुनि पुलकाहीं
२—श्रीदशरत्थ सों मांगिबे हेत गुनी निगुनी दोउ द्वार पै ठाढ़े।
३—सब कर संसय अरु अज्ञानू। मंद महीपन कर अभिमानू॥
भृगुपति केरि गर्व-गरुवाई। सुर मुनि वरन केरि कदराई॥
सिय कर सोच जनक परितापा। रानिन कर दारुन दुख दापा॥
संभु चाप बड़ बोहित पाई। चढ़े जाय सब संग बनाई॥

४—मुख ससि निरखि चकोर अरु, तन पानिप लखि मीन।
पद पंकज देखत भँवर, होत नयनरस लीन॥

सू०—इन उदाहरणों में केवल वर्ण्यों की धर्मैकता कही गई है।

(२)—दूसरी

दोहा—धर्म अवर्ण्यन को जहां एकै विधि ठहराय।
तुल्ययोगिता दूसरी ताहि कहैं कबिराय॥

वि०—जहाँ अनेक उपमानों का एकही धर्म कहाजाय। जैसे—

दो० लखि तेरी सुकुमारता ए री या जग माहिं।
कमल गुलाब कठोर से केहि को भासत नाहिं॥
एक बेर जिन जिन लखे तेरे लोचन चाहि।
नीके लागत मीन मृग खंजन कंज न ताहि॥
सिव सरजा भारी भुजन भुव भरु धर्‍यो सभाग।
भूषन अब निहचिंत हैं सेसनाग दिगनाग॥

सवैया—चंदन चंद पियूष मयूष रु सुद्ध पयोनिधि छोभ सों पागे। पूनो की राति में कैरव के बन संत सरोरुह हू छवि जागे॥ पारद हार तुषार पहार कपूर के भार रु दूध के फागे। मैले लगे सबही के बिलास सु राम महीपति के जस आगे।

सू०—इन उदाहरणों में अवर्ण्यों (उपमानों) की धर्मैकता कही गई है।

३—(तीसरी)

दो०—सम करिये उत्कृष्ट गुण बहु के इक महँ लाय।
तुल्ययोगिता तीसरी ताहि कहैं कविराय॥
जाय जोहारै कौन को कहा कहूँ है काम।
मित्र मातु पितु बंधु गुरु साहेब मेरे राम॥
तुम विधि, बुध, विधु, विबुधपति विधुधर बुद्धिनिधान
तुमहि भूप हौ कल्पतरु गुणनिधि चतुर सुजान॥
कामधेनु अरु कामतरु चिंतामणि मन मानि।
अरु चौथो तेरो सुजस ये मनसा के दानि॥

सूचना—(तीसरी तुल्ययोगिता और दूसरे उल्लेख का भेद) तीसरी तुल्ययोगिता में एक को बहुतों की समता दीजाती है। दूसरे उल्लेख में एक को बहुत भाँति से वर्णन किया जाता है। तुल्ययोगिता में बहुतों के उत्कृष्ट गुणों को एक में समता की जाती है।

उल्लेख में बहुतों के गुण पृथक पृथक वर्णन करने का तात्पर्य होता है। नीचे लिखे उदाहरण समझो।

तुल्ययोगिता-यह राजा इन्द्र, करण और युधिष्ठिर के समान है।

उल्लेख—यह राजा तेज में इन्द्र, दान में करण और धर्म में युधिष्ठिर है।

(भेद)-तुल्ययोग्यता में समता कथन का भाव रहता है, उल्लेख में केवल गुण वर्णन का भाव रहता है।

४- (चौथी)

दो०—हितु में अनहितु में जहाँ करिये एकै धर्म।

यथा

दो०—जो सींचै सर्पिष सिता अरु जो हनै कुठाल।
कटु लागै तिन दुहुन को यहै नींब की चाल॥
कोऊ काटो क्रोध करि वा सींचो करि नेह।
बेधत वृक्ष बबूल को तऊ दुहुन की देह।
जो सींचत काटत जु है जो पेरत जन कोइ।
जो रक्षत तिन सबन को ऊख मीठियै होइ॥
बन्दौ संत समान चित हित अनहित नहिं कोउ।
अञ्जलि गत शुभ सुमन जिमि सम सुगन्ध कर दोउ॥

'दास जू पापी सुरापी तपी धरु जापी हितू अहितू समभाई।
गङ्ग तिहारी तरंगन सों सब पावैं पुरन्दर की प्रभुताई।
श्री रघुनाथ पुरी की प्रभा सरयू के तरङ्ग ते संग गली में।
सिद्ध सुरापी असंत औ संत विमान चढ़े लसैं व्योमथली में।

१८—(दीपक)

दो० वर्ण्य अवर्ण्यन को जहां एकै धर्म कहाय।
दीपक तासौं कहत हैं सिगरे कवि समुदाय॥

विवरण-जहां उपमेय और उपमान दोनों का एक धर्म कथन किया जाय, वहाँ दीपक होता है। जैसेः—

दो०—सोहत भूपति दान सों फल फूलन आराम।

२-गोकुल दोऊ सराहिबे योग्य जगै जग में जस मोद महातें।
रावरे नैन कटाक्षन ते बलि खंजन राजत चंचलता तें।

३-थाह न पैये गँभीर बड़ी है सदाही रहै परिपूरण पानी।
राकै विलोकि कै श्रीयुत दास जू होत उमाहिल मैं अनुमानी॥
आदि वही मरजाद लिये रहै हैं जिन की महिमा जग जानी।
काहू के केहूं घटाये घटै नहिं सागर औ गुण आगर प्रानी॥

सूचना—पहले उदाहरण में 'भूपति' वर्ण्य है 'आराम' अवर्ण्य है, दोनों का धर्म 'सोहत' एकही कहा गया है; परन्तु सोहने के कारण भिन्न २ कहे गये हैं। इसीप्रकार दूसरे उदाहरण में नैन वर्ण्य, खंजन अवर्ण्य है, दोनों का धर्म 'राजत' एकही कहा गयाहै, परन्तु राजने का कारण कटाक्ष और चंचलता भिन्न २ हैं। तीसरे उदाहरण में 'गुण आगर प्राणी वर्ण्य' है और 'सागर' अवर्ण्य। 'घटाये घटैं नहीं" धर्म एक है। श्लेष से दोनों के कारण की भी एककता दिखलाई है, पर वास्तव में कारण यहां भी भिन्न २ हैं।

४-संगते जती कुमंत्र ते राजा। मानते ज्ञान पान ते लाजा।
प्रीति प्रणय बिनु मद ते गुनी। नाशहिं वेगि नीति अस सुनी।

इसमें 'राजा' वर्ण्य है और शेष सब अवर्ण्य हैं। कारण भिन्न २ हैं 'नाशहिं' सब का धर्म एक कहा गया है। (इसी प्रकार और भी समझना)

दो०–सुरसरिता सों सिंधु अरु चंद्रिकाहि सों चंद ।
कीरति सों सजवंत नृप महिमा धरत अमंद ॥

सूचना–१–तुल्ययोगिता में केवल उपमेयों का वा केवल उपमानों का एक धर्म कथन किया जाता है।

२–दीपक में उपमेय और उपमान के धर्म का एक ही साथ कथन किया जाता है।

(१६) आवृत्ति दीपक

क्रियापदन को होत जहँ आवर्त्तन को जोग ।
दीपक आवृति कहत हैं ताहि सकल कबिलोग ॥
दीपक आवृति तीन विधि, पदावृत्ति एक जानु ।
अर्थावृति दूजी, तृतिय पद-अर्थावृति मानु ॥

(१) पदावृत्ति)

अर्थ दोय पद एक की आवृति करिये जौन ।
पदावृत्ति दीपक तहाँ कहिये मति के भौन ॥

(यथा)

दो०–बहै रुधिर सरिता बहैं किरवानैं कढ़ि कोस ।
बीरन बरहिं बरांगना बरहिं सुभट रण रोस ॥

दो०–नंद सुवन ब्यारू करत बाढ़ी प्रीति अथोर ।
परसति सुन्दरि सरस तिय परसति दग की कोर ॥

रघुनाथ जहां तक गोधन है सँग ते चरिबो परित्यागत हैं ।
सुरसाँवरे सारँग रागत हैं बन के सब सारँग रागत हैं ।

२ (अर्थावृत्ति)

दो०-शब्द पृथक एकै अरथ जहाँ सु आवृत लेत।
अर्थावृत्ति दीपक तहां कहैं सुकबि करि हेत॥

(यथा)

पयपयोधि तजि अवध बिहाई। जहँ सियराम लखन रहे आई।

दो० दौरहिं संगर मत्त गज धावहिं हय समुदाय।
नटहिं रंग महँ बहु नटी नाचहिं नट हरखाय॥

पुनः-दिस दिस बिकसे कुंज बन फूले रुचिर रसाल।

(सवैया)

छिन होत हरीरी मही को लखै निरखै छिनही घन जोति छटा।
अवलोकति इंद्र वधूनकी पांति विलोकनि है छिन कारी घटा।
तकि डार कदंबन की तरसै दरसै तउ नाचत मोर अटा।
अध ऊरध आवत जात भयो चित नागरि को नट कैसो बटा।

पुनः—कूजहिं कोकिल गूँजहिं भृङ्ग।

काहे ते आए नहीं 'रघुनाथ, ये आइके औधि के बासर पूजे।
देखु मधुव्रत गूंजे चहूं दिसि कोयल बोली कपोतहु कूजे।

३ (पदार्थावृत्ति)

दो० पद अरु अर्थ दुहून की आवृति फिरि फिरि होय।
कहत पदार्थावृति तेहिं दीपक सब कवि लोय॥

(यथा)

दो०-गरजत हैं रण राम जू गरजत है दससीस।
धावत रिस भरि रजनिचर चहुँदिसि धावत कीस।

बोलत चातक चाय सों बोलत-मत्त मयूर ।
पुनः-तोष्यो नृपगण को गरब तोरयो हरकोदंड ।
राम जानकी जीव को तोरयो दुःख अखंड ॥
'ग्वाल कवि, आन भरे सान भरे स्यान भरे कछू अलस्यान भरे भरे मान माल के । लाज भरे लाग भरे लाभ भरे लोभ भरे लाली भरे लाड़ भरे लोचन हैं लाल के ।
भले भलाई पै लहैं लहैं निचाई नीच
सुधा सराहिय अमरता गरल सराहिय मीच ॥

सूचना—स्मरण रखना चाहिये कि लाटानुप्रास तथा यमक नामक शब्दालंकारों में भी शब्दों का आवर्तन होता है । भेद यह है कि उन शब्दालंकारों में सब प्रकार के शब्दों का आवर्तन होता है और इस अलंकार में केवल क्रियापद का आवर्तन है । वे आवर्तन केवल 'कान, को सुखकर है । यह अर्थालंकार है और इसके क्रियापदों का आवर्तन अर्थ में विलक्षणता आता है ।

(२०) कारकदीपक

दो० क्रम तें क्रिया अनेक को कर्ता एकै होय ।
कारक दीपक ताहि को बरनत हैं सब कोय ॥

बिवरण—क्रियायें कई एक हों, पर उनका कर्ता एक हो, वह कारक दीपक अलंकार कहलाता है ।

सूचना—स्मरण रखना होगा कि 'समुच्चय' अलंकार में भी कई क्रियाओं का कर्ता एक होता है, पर दोनों में भेद यह है कि 'कारकदीपक' की क्रियाओं से प्रगट किये कार्यों का क्रम से (पहले एक, फिर दूसरा फिर तीसरा इत्यादि) होना समझा जाता है, और 'समुच्चय'-वाली क्रियाओं से प्रगट किये हुए कार्य एक तो केवल भाव बाचक होते हैं दूसरे उनका होना एक साथ पाया जाता है अर्थात् उनमें क्रम नहीं प्रगट होता । इसी लिये इस

अलंकार की परिभाषा में "क्रमसे" पद दिया गया है। जैसे:—

१—लेत चढ़ावतखैंचत गाढ़े।

२—दरस दियो तो मित्र बर आओ बैठो पास।
कुशल कहो निज भवन की बाढ़ै हिये हुलास॥

३—ऋषिहिं देखि हरषै हियो, रामदेखिकुम्हिलाय।
धनुष देखि डरपै महा, चिंता चित्त डोलाय॥

(२१) मालादीपक

दो०—दीपक अरु एकावली मिलैं जहाँ ये दोय।
बरनत कवि कोविद सकल मालादीपक सोय।

सो० जगकी रुचि ब्रजबास, ब्रजकी रुचि ब्रजचंद हरि।
हरि रुचि बंसी 'दास' बंसी रुचि मन बाँधिबो॥

रस सों काव्यरु काव्य सों सोहत बचन महान।
बाणी ही सों रसिक जन तिन सों सभा सुजान॥

भारत सरिस को राम सनेही। जग जपु राम राम जपु जेही।

मन कवि भूषण को सिवकी भगति जीत्यो सिवकी भगति जीत्यो साधुजन सेवा ने। साधुजन जीते या कठिन कलिकाल कलिकाल महाबीर महाराज महिमेवाने॥ जगत में जीते महाबीर महाराजन ते महाराज बावन हू पातसाह लेवा ने। पातसाह बावनौ दिली के पातसाहि दिलीपति पातसाहै जीत्यो हिंदूपति सेवा ने।

(२२) देहरीदीपक

दो०—परै एक पद बीच में दुहूँ दिसि लागै सोइ।
सो है दीपक देहरी जानत हैं सब कोइ॥

सवैया-ह्वै नरसिंह महामनुजाद हन्यौ प्रहलाद को संकट भारी।
दास विभीषनै लङ्क दई निजरंक सुदामा को संपतिभारी॥
द्रोपदी चीर बढायो जहान में पांडव के जसकी उजियारी।
गर्विन के खनि गर्व बढावत दीनन के दुख श्री गिरधारी॥

सूचना-यहाँ रेखांकित शब्द दोनो ओर लगते हैं शब्द का ऐसा ही प्रयोग देहरीदीपक है।

पुन दो०-लहि जसवंत नरेश पद कविन निहाल सु 'कीन'।
अभय प्रजा मरुदेश अरु सभय जु अखिल अरीन॥

यहाँ 'कीन' शब्द दोहे के उत्तरार्द्ध में भी लगता है।

(२३) प्रतिवस्तूपमा

दोहा-युग वाक्यन को होत जहँ एकै धर्म बखान।
भूषण प्रतिवस्तूपमा ताहि कहैं मतिमान॥

विवरण-इस अलंकार में तीन बातें जरूरी हैं-(१) उपमेय और उपमान स्वरूप दो वाक्य (२) दोनों वाक्यों का एकही धर्म (३) उस धर्म का समानार्थवाची शब्दों द्वारा अलग अलग कथन। जैसेः—

"सोहत भानु प्रताप सों लसत सूर धनु बान"।

१— { लसत सूर धनु बान = उपमेयवाक्य है।
{ सोहत भानु प्रताप सो = उपमानवाक्य है।

२—शोभित होना दोनों वाक्यों का एक धर्म है।

३— { उपमेय में वही धर्म 'लसत' से कहा गया है।
{ उपमान में वही धर्म 'सोहत' से कहा गया है।

दो०-चटक न छांड़त घटत हू, सज्जन नेह गँभीर।
फीको परै न बरु फटै, रँग्यो चाल रँग चीर॥

इस दोहे में सज्जन की प्रति की दृढ़ता का वर्णन है। पूर्वार्द्ध

उपमेय वाक्य, और उत्तरार्द्ध उपमान वाक्य है। 'कम न होना' दोनों का एक धर्म है जो 'चटक न छाँड़त' और 'फीको परै न' दो एकार्थ वाची शब्दों द्वारा प्रगट किया गया है। केवल शब्द अलग २ हैं अर्थ एक ही है।

पुनः-तिनहि सोहातन अवधबधावा। चोरहिं चाँदनिरातिं न भावा॥

इसमें पूर्वार्द्ध वाक्य उपमेयरूप और उत्तरार्द्ध वाक्य उपमान रूप है। दोनों का एक धर्म "सोहत न" और " न भावा" पृथक् पृथक् शब्दों द्वारा कथन किया गया है।पुनः—

दो०-साधुसंग पायहु नहीं खलको खलपन जाय।
सुधा पियायहु अहि नहीं, तजत गरल दुखदाय॥
पिशुन बचन सज्जन चितै, सकै न फोरि न फारि।
कहा करै लगि तोय में, तुपक तीर तरवारि॥

यहां 'सकै न फोरि न फारि' और 'कहा करै' भिन्न शब्दों द्वारा 'अशक्तात' रूपी एक धर्म प्रगट किया है।

(पुनः)

रंग सों वारिज छाजैं भरे छबि राधे के नैन कटाक्ष सों राजैं।
पुनः-राजै सुधा सों सुधानिधियौं मुसकानिसों सोहत तो मुखजैसे

सूचना—कभी कभी काकु से और 'एकार्थ वाची' शब्दों के बदले 'विरोध-वाची' शब्दों द्वारा भी इसका 'एक धर्म' कहा जाता है जैसेः—

(काकु से)—सो मैं वरणि सकौं विधि केहीं।
डाबर कमठ कि मंदर लेहीं?

यहां उपमेय रूपी पूर्वार्द्धवाक्य में वर्णन की 'अशक्तता' कही गई है और उपमान रूपी उत्तरार्द्ध वाक्य में 'काकु' से 'अशक्तता प्रगट है।

(विरोधवाची शब्दोंसे)-प्रगटहोतगुणआपही,कहेऔर केनाँय
लहसुनकीदुर्गंधनहिंसौगँद कियेछिपाय॥

यहां उपमेय वाक्य में 'गुण' और उपमेय वाक्य में दुर्गंध' (अवगुण) कहा गया है, और उपमेय वाक्य में 'आपही प्रकट होत'-'विधिवाक्य'-से और उपमान वाक्य में नहिं सौगँधकिये छिपाय'- निषेध वाक्य-से दोनोंकी 'एकधर्मता' गुण का प्रगट होजाना-कहा गया है।

सूचना-इस अलंकार की माला भी देखी जाती है। जैसेः—

दो० बहत जु सर्पन को मलय, धरत जु काजर दीप।
चंदहु भजत कलंक को, राखहिं खलन महीप॥

इस में चार वाक्य हैं। चारो में अंतिम वाक्य उपमेय रूपहै, और शेष तीन उपमान रूप हैं। चारों की एकधर्मता 'बहत' 'धरत' भजत, और राखहिं एकार्थवाचीशब्दों से कहीगई है।

पुनः-मदजलधरनद्विरद बल राजत, बहुजलधरनजलदछबिसाजै
पुहुमि धरन फनिनाथलसतअतितेजधरनग्रीषमरविछाजै॥
खरग धरन सोभा तहँ राजत रुचिभूषनगुण धरन समाजै।
दिल्लिदलन दक्षिण दिसि थंभन पेड़धरनशिवराज विराजै॥

(२४) दृष्टान्त

दो० लखि बिंबा प्रतिबिंबगति उपमेयो उपमान।
वाचक पदके लोप तें है दृष्टान्त सुजान

विवरण-दृष्टान्त में दो वाक्य होते हैं, एक उपमेय वाक्य दूसरा उपमान वाक्य। दोनों वाक्यों केपृथक पृथक धर्म होते हैं। दोनोंमें बिंब प्रतिबिंब भावसा जान पड़ता है अर्थात् एक प्रकार की समतासी जान पड़ती है। परन्तु यह समता बिना 'वाचक' शब्दों के दिखलाई जाती है।

(यथा)

दो०–पगीं प्रेम नँदलाल के, हमें न भावत जोग।
मधुप राजपद पाय कै, भीख न मांगत लोग॥

इसमें पूर्वार्द्ध उपमेय वाक्य है इसका धर्म है जोग न भाना, और उत्तरार्द्ध उपमान वाक्य है जिसका धर्म है 'भीख न मांगना' परन्तु बिना वाचक शब्द के ही इन दोनों की समता का बिंब प्रतिबिंब झलकता है। अर्थात् कृष्ण के प्रेमियों का जोगमें लिप्त होना वैसाही है जैसे किसी राजाका भीख मांगना।

पुन–१

रामकलाधरकीसुषमा लखि आंखिनकोरुखऔरनभावै
छोड़ितरंगसुधासरिकी कोउ पोखरि को जलपीवनधावै

२–शिव औरंगहि जिति सकै और न राजा राव।
हत्थिमत्थ पै सिंह बिनु आन न घालै घाव॥

३–निरखि रूप नंदलाल को दृगन रुचै नहिं आन।
तजि पियूष कोऊ करत कटु औषधि को पान॥

सूचना–दृष्टान्त से मिलता हुआ प्राचीनों ने 'उदाहरण' नामक एक अलंकार माना है जिसकी हिन्दी काव्य में बड़ी भरमार है परन्तु हाल को आचार्यों ने इसे न जाने क्यों छोड़ दिया है। यह उदाहरण अलंकार, उपमा दृष्टान्त, और अर्थान्तरन्यास में से किसी में भी अन्तर्भूत नहीं हो सकता।

ज्यौं, यों जैसे कहि करिय युग घटना समतूल।
उदाहरण भूषण कहैं ताहि सुकबि बुधिमूल॥

कोई साधारण बात कहकर 'त्यों जैसे' इत्यादि वाचक शब्दों द्वारा किसी विशेष बात से समता दिखलाई जाती है वहाँ 'उदाहरण' अलंकार होता है। दृष्टान्त और अर्थान्तरन्यास में वाचक शब्द नहीं आता। उदाहरण अलंकार के उदाहरण ये हैं।

(यथा)

दो०—एक दोष गुण पुंज में होत निमग्न 'मुरार'।
जैसे चंदमयूख में अंक कलंक निहार॥
अनरसहू रस पाइये रसिक रसीली पास।
जैसे सांठे की कठिन गांठौ भरी मिठास॥
जगत जनायो जेहि सकल सो हरि जान्यो नाहिं।
ज्यौं आँखिन सब देखिये आँखि न देखी जाहिं।

इन उदाहरणों में 'ज्यौं, जैसे वाचक शब्द आये हैं, अतः ये दृष्टान्त नहीं हैं (परिभाषा देखो)

दृष्टान्त अलंकार में कवि का मुख्य लक्ष्य उपमान वाक्य (उत्तरार्द्ध भाग) पर होता है। उदाहरण अलंकार में कवि का मुख्य लक्ष्य उपमेय वाक्य (पूर्वार्धभाग) पर होता है, उत्तरार्ध केवल बानगी के तौर पर होता है।

(उदाहरणालंकार के और उदाहरण)

बुरो बुराई जो तजै तो चित खरो सकात
ज्यौं निकलंक मयंक लखि गनैं लोग उतपात॥
यौं दल काढ़े बलख ते तैं जयसाह भुवाल।
उदर अघासुर के परे ज्यौं हरि गाय गुवाल॥

(दृष्टान्त अलंकार की माला भी देखी जाती है)

(यथा)

अरविंद प्रफुल्लित देखि के भौंर अचानक जाय अरैं पै अरैं
बनमाल थली लखि कै मृगशावक दौरि बिहार करैं पै करैं॥

सरसी ढिग पाय के व्याकुल मीन बिलास सों कूदि परैं पै परैं ।
अवलोकि गोपाल को 'दासजू' ये अँखियां तजि लाज ढरैं पै ढरैं ॥

सूचना—स्मरण रखना चाहिये कि इसी से मिलता जुलता हुआ "अर्थान्तरन्यास" अलंकार भी होता है। दोनो में भेद यह हैं कि:—

दृष्टान्त में दो सम वाक्यों की एकता दिखाने का भाव होता है।

अर्थान्तरन्यास में एक वाक्य का समर्थन दूसरे वाक्य से किया जाता है।

(जैसे)

काटे पै कदली फलै कोटि जतन करि सींच ।
विनय न मान खगेश सुनु डाटेहि पै नव नीच॥

यहाँ कदली वृक्ष और नीच पुरुष की एकता दिखलाने का भाव है इसलिये यह दृष्टान्त अलंकार है और—

टेढ़ जानि शंका सब काहू । वक्र चन्द्रमहि ग्रसै न राहू ।

यहाँ एक वाक्य का दूसरे वाक्य से समर्थन करने का भाव है, इसलिये यह अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

अर्थान्तरन्यास में साधारण का समर्थन विशेष से और विशेष का समर्थन सधारण से होता है। और दृष्टान्त में साधारण की समता साधारण से और विशेष की समता विशेष से की जाती है।

बहुधा विद्यार्थी इन दोनों के उदाहरणों में भेद नहीं कर सकते ऐसा हमारा अनुभव है इसलिये इन दोनों के भेद को अच्छी तरह समझ लेना चाहिये

१—'सूचना'—प्रतिवस्तूपमा' में दोनों वाक्यों का एक ही धर्म होता है और वह दोनों वाक्यों के साथ अलग अलग एकार्थ वाची शब्दों में कहाजाता है

२—दृष्टान्त में दोनो वाक्यों के धर्म भिन्न २ होते हैं, अर्थात् केवल

उपमेय वाक्य और उपमान वाक्य में बिंवप्रतिबिंबभाव होता है, धर्म में बिंब-प्रतिबिंब भावनहीं होता, परन्तु कवि उसका कथन ऐसी युक्ति से करता है, कि उस युक्ति के कारण दोनों वाक्यों में एक प्रकार की एकता सीभासने लगती है। इसी विलक्षणता का नाम अलंकार हैं।

(२५) निदर्शना

दो०-सरिस वाक्य युग के अरथ करिये एक अरोप।
भूषण ताहि निदर्शना कहत बुद्धि दै ओप॥

विवरण-जहाँ दो वाक्यों के अर्थ में (विभिन्नता रहते हुए भी) समता भाव सूचक ऐसा आरोप कियाजाय कि दोनों एक से जान पड़ें, वहां निदर्शना अलंकार होता है। प्राचीन आचार्योंने इसके दो भेद कहे हैं, परन्तु नवीन आचार्य इसके पांच भेद मानते हैं।

१-(प्रथम निदर्शना)

दो०-जो,सो,जे,ते,पदन करि असम वाक्य सम कीन।
ताकँह प्रथम निदर्शना बरनैं कवि परवीन॥

(यथा)

१-जो अति सुभट सराह्यो रावन। सोसुग्रीव केर लघु धावन।
२-सुनु खगेश हरिभक्ति बिहाई। जे सुख चाहहिं आनउपाई।
ते सठ महा सिंधु बिनु तरनी। पैरि पार चाहत जड़ करनी।

दो०-जंग जीत जे चहत हैं तोसों वैर बढ़ाय
जीबे की इच्छा करत कालकूट ते खाय॥

(सवैया)-जो शुभ वानी बसै विधि संग सदा शिव अंग बसै सु भवानी। जो कमला कमलापति के सँग 'देव' सचीश

सची सुखदानी। दीपशिखाव्रज मंदिर सुंदर आगति जोति सबै जग जानी। साधु की साधिका सिद्धि समाधिका सो ब्रजराज की राधिका रानी।

सूचना=दो०-वाचक शब्द कहूं कहूं लोप करैं कविराय।
अर्थ गौर करि कीजिये निदर्शना दरसाय॥

यथा-दो० साहन सों रन मांड़िवो कीवो सुकवि निहाल।
सिव सरजा को ख्याल है औरन को जंजाल॥

अर्थात् जो शिवाजी के लिये एक खेल के समान है, वही औरों के लिये महा कठिन काम है।

पुन -मीठे बचन उदार के सोने माहिं सुगंध।

अर्थात् उदार में मधुर भाषण गुण का होना ही सोने में सुगंध का होना है।

सवैया-अति खीन मृणाल के तारहु ते तेहि ऊपर पाँव दै आवनो है। सुई बेह को बेधि सकै न तहाँ परतीत को टाँड़ो लदावनो है। कविबोधा अनी घनी नेजहु की चढ़ि तापै न चित्त डगावनो है। यह प्रेम को पथ करार है री तरवार की धार को धावनो है।

२-(दूसरी निदर्शना)

थापिय गुण उपमान को उपमेयहि के अंग।
ताकहँ द्वितिय निदर्शना कहिये सुमति उतंग॥

(यथा)

दो०-जब कर गहत कमान सर देत अरिन को भीति।
भाउसिंह में पाइये सब अरजुन की रीति।

लीन्ह्यों तेरे करन नृप करन करन की रीति।
पायन अंगद की वहै लई रीति करि प्रीति।

अस कहि फिरि चितये तेहि ओरा। सिय मुखससिभयेनैनचकोरा

३ (तीसरा निदर्शना)

दो०—थापिय गुण उपमेय को उपमानहि के अङ्ग।
ताकहँ त्रितिय निदर्शना कहिये सुमति उमङ्ग॥

सवैया—आनन ओज अमंद प्रमान कलाधर में वही छाँह परी है।
वंक विलोचन की लछिराम प्रकाशक लालिमा कंज करी है।
मौज महातम की महिमा किल कल्पलता परतीति धरी है।
गौर गँभीरता श्रीरघुनाथ की छीर समुद्र के बीच भरी है।

पुनः—नेकुहँसी सो भई नखतावली मालती कुंदजुहीन पै दाया।
बैन कहेते भये वे सुधागति सों भई हंसनकी सुचिकाया।
ज्योतिके भूषणपोतसे लागत यौं 'गुरुदत्त, करी बिधिमाया।
चंद भयो मुखको प्रतिबिंब उदैभई चांदनी अंगकी छाया।

पुनः—(कवित्त)

कीरति सहित जो प्रताप सरजा में वर मारतंड मध्य तेज चांदनी सो जानी मैं। सोहत उदारता औ सीलता खुमान में सो कंचन में मृदुता सुगंधता बखानी मैं। भूषण भनत सब हिन्दुन के भाग फिरे चढ़े ते कुमति चकता हू की पेसानी में। सोहत सुवेस दान कीरति सिवा में सोई निरखी अनूप रुचि मोतिन के पानी में।

दो०—तुव बचनन की मधुरता रही सुधा महँ छाय।
चारु चमक चख नैन की मीनन लई छिनाय॥

४–(चौथी निदर्शना)

दो०–अपने सद् व्यौहार तें औरहिं सिखवै ज्ञान।
सो सद् अर्थ निदर्शना मानैं सब बुधिमान॥

(यथा)

दो० गुरुपादोदक सिर धरिय सदा जतावत एहु।
सिर धारत हैं गंग को महादेव करि नेहु॥
उदय होत ही जगत को हरत तपनि दुख दंद।
सबही को सुख दीजिये बढ़े बतावत चंद॥

पद करहिय मुख चख समताई। पायकमल अहिमिति नहिं लाई।
कीच बीच बसि अस सिखलावै। नमि जो चलै ऊँच पद पावै।

दै सु फूल फल दल सुद्रुम यह उपदेशत ज्ञान।
लहि सुख संपति कीजिये आये को सनमान॥

५–(पाचवीं निदर्शना)

दो० असत क्रिया निज सों असत अर्थ जनावै कोय।
पंचम असद् निदर्शना तेहि भाषत सब कोय॥

(यथा)

दो०–खोवत प्रान अजान जे करत क्रूर को संग।
यहै सिखावत छोड़ि तन दीपकशिखा पतंग।

सो०–कच घुँघुरारे जोय, यहै जनावत दुरजनहिं।
नितहू बंधन होय, तऊ न तजिये कुटिलता॥

दो०–राजबिरोधी नसत है यौं जग को दरसात।
चंद उदय तें तमनिकर छिन छिन छीजत जात॥

पद्कंदुक सिखवत सबहिं सहि सहि लात अघात ।
सार हीन संसार में लालन मारे जात ॥

सवैया—

धूर धुरेटे चपेटे परे महिं संग न कोऊ सहायक गोत है।
भैया सगो भयो वैरी समै लहिं बूड़ि गयो बलबाँहउदोत है।
और कहा कहिये लछिरामजू सोई मिलैं कोउ बीज जो बोत है।
तारा कहै मुख बालि निहारिकै राम न जाने को या फल होत है।

(सूचना)

१—प्रतिवस्तूपमा में दोनों वाक्य स्वतंत्र होते हैं।
२—दृष्टान्त और निदर्शना के दोनों वाक्य परस्पर अपेक्षित होते हैं, स्वतन्त्र नहीं।
३—दृष्टान्त में वाचक नहीं होता।
४—निदर्शना में वाचक होता है।

(२६)—व्यतिरेक

दो० उपमा ते उपमेय में अधिक कछू गुण होय।
व्यतिरेकालंकार तेहि कहैं सयाने लोय ॥

विवरण—जहाँ उपमान की अपेक्षा उपमेय में कुछ उत्कृष्टता कही जाय वहाँ यह अलंकार होता है। यह उत्कृष्टता दो प्रकार से प्रगट की जाती है:—

१—उपमेय में उपमान से कोई गुण अधिक कहा जाय।
२—उपमान में कोई हीनता दिखाई जाय।

(पहले ढंग के उदाहरण)

१—मुख है अम्बुज सो सही मीठी बात विशेष।
२—संत हृदय नवनीत समाना। कहा कविन पै कहत न जाना।
निज परिताप द्रवै नवनीता। पर दुख द्रवैं सुसंत पुनीता।

३—सखि वामें जगै छनजोति छटा इत पीतपटा दिनरैन मड़ो।
वह नीर कहूं बरसै सरसै यह तो रसजाल सदाहीं अड़ो।
वह स्वेत है जात अपानिप है यह रंग अलौकिक रूप गड़ो।
कह 'दास' बरोबरी कौन करै घन औ घनश्याम सों बीचबड़ो।

४—सिवराज साहिसुव सत्थ नित हय गय लक्खन संचरइ।
यक्कय गयंद थक्कय तुरँग किमि सुरपति सरवरि करइ॥

(दूसरे ढंग के उदाहरण)

१—जिनके यश प्रताप के आगे। ससि मलीन रवि सीतल लागे।

२—जन्म सिंधु पुनि बंधु विष दिन मलीन सकलंक।
सिय मुख समता पाव किमि चंद वापुरो रंक॥

३—घटै बढ़ै सकलंक लखि सब जग कहै ससंक।
सीय बदन सम है नहीं रंक मयंक एकंक॥

(२७)—सहोक्ति

दो०—जहँ मनरंजन बरनिये एक संग बहु बात।
सो सहोक्ति आभरण है ग्रन्थन में विख्यात॥

(यथा)

जस प्रताप वीरता बड़ाई। नाक पिनाकहि संग सिधाई।

पुनः—गहिकरतलमुनि पुलक सहित कौतुकहिं उठाय लियो।
नृपगण मुखन समेत नमित करि सजि सुख सबहिं दियो।
आकरष्यो सिय मन समेत हर हरष्यो जनक हियो। भंज्यो
भृगुपति गर्व सहित तिहुँ लोक विमोह कियो।

त्रिभुवन जय समेत वैदेही। बिनहि बिचार बरै हठि तेही।

पुनः-(कवित्त)

जनक निराशा, दुष्ट नृपन की आशा, दुरजन की उदासी, शोक रनिवास मनु के। वीरन के गरब गरूर भरपूर सब, भ्रम मोह आदि मुनि कौशिक के तनु के। 'हरिचंद' भय देव मन के, पुहुमि भार, विकल किवार सबै पुरनारी जनु के। शंका मिथिलेश की, सिया के उरशूल सबै तारि डारे रामचन्द्र साथै हरधनु के।

सूचना—संग, सहित, समेत, साथ, एकै साथ इत्यादि या इसी अर्थ के अन्य शब्द इस अलंकार के वाचक हैं।

(२८)—बिनोक्ति

दो०—द्वै विधि कहैं बिनोक्ति को सुकबि बुद्धि के ऐन।
प्रस्तुत कछु बिन न्यून अरु कछु बिन शोभा दैन॥

(प्रथम बिनोक्ति)

कछू वस्तु बिन बरनिये वर्णनीय जहँ हीन।

(यथा)

राम सुरूपनिधान को रूप प्रकाशक पंचवटी न अमात है।
लक्खन मैथिली साथ जऊ रिपुदौन भरत्थ बिना न सोहात है।

दो० कवि बिन नहिं सोहै सभा निशि बिनु सुधानिवास।
फबत न गिरिधरदास बिनु गिरिधर 'गिरिधर-दास'।

जिय बिन देह नदी बिनु बारी। तैसइ नाथ पुरुष बिनु, नारी।

पुनः-जिमि भानु बिनु दिन, प्राण बिनु तनु, चन्द्र बिनु जिमि जामिनी। तिमि अवध तुलसीदास प्रभु बिनु समुझि धौं जिय भामिनी।

अस जिय जानि भजहिं जे आना। ते नर पशु बिनु पूंछविषाना।

(द्वितीय विनोक्ति)

वर्णनीय वर्णत जहां कछू वस्तु बिनु रम्य ।

(यथा)

भली प्रीति बिन कपट की देत सबहिं चित चैन।
पुनः–कैसे नीके लगत ये बिनु सकोच के बैन ॥
सो० बिनु कठोरता अम्ब, लसत रावरे के चरण।
सब जगके अवलंब, वसत साधु जन के हिये ॥

(मिश्रित)

(द्वितीय)-त्रास बिना सोहत सुभट, जैसे मणि गणमाल।
(प्रथम)-दान[1] बिना सोहत नहीं नृप जिमि द्विरद विशाल॥

(१)= (क) दक्षिणा (ख) गजमद ।

(ध्वनि से)

(प्रथम)-बड़े दृगन को फल कहा जो न लख्यो हरिरूप।
धिक श्रवणन जो नहिं सुने प्रभु के चरित अनूप।

अर्थात् बिना हरि दर्शन नेत्र और बिना हरिकथा सुने कान शोभा नहीं पाते ।

(२६)–समासोक्ति

दो०-जहँ प्रस्तुत में होत है अप्रस्तुत को भान ।
समासोक्ति तेहि कहत हैं कवि जन परम सुजान ॥

---

* इस अलंकार को अँगरेज़ी में 'माडेल मेटैफर' Model Metaphor कहते हैं ।

कवि इच्छा जेहि कथन की 'प्रस्तुत' ताका जानु।
अनचाहे हूँ फुरि परै 'अप्रस्तुत' सो मानु॥

विवरण–जब किसी कथन में कविइच्छित अर्थ के अलावा (शब्दों की गंभीर गठन के कारण) कोई दूसरा अर्थ भी भासमान होता है तब उस कथन में समासोक्ति अलंकार माना जाता है। ऐसे कथन में बहुधा ऐसे श्लिष्ट शब्द अनायास आ जाते हैं, जिससे दूसरे अर्थ का भान होने लगता है। परन्तु यह ज़रूरी नहीं है कि श्लिष्ट शब्दों ही द्वारा यह अलंकार सिद्ध हो सकै। अश्लिष्ट शब्दों से भी काम चल सकता है।

(अश्लिष्ट शब्दों द्वारा)

१–लोचन मगु रामहिं उर आनो। दीन्हें पलक कपाट सयानी

इसमें कवि इच्छित अर्थ के अलावा यह भी भासित होता है कि किसी चंचल व्यक्ति को बँधुवा बनाने के व्यवहार में किवाड़ों को बंद कर देना होता है।

२-"कुमुदिन हू प्रमुदित भई साँझ कलानिधि जोय"।

इसमें कविइच्छित अर्थ तो यह है कि 'संध्या समय में चंद्रमा को देखकर कुमोदिनी फूली। परंतु इससे किसी नायिका की दशा की भी सूचना मिलती है।

(श्लिष्ट शब्दों द्वारा)

१–बड़ोडील लखि पील को सबन तज्यो बन थान।
धनि सरजा तू जगत में ताको हस्यो गुमान॥

इसमें 'सरजा' शब्द श्लिष्ट है। इसका अर्थ है (१) सिंह और (२) शिवाजी का एक ख़िताब होने के कारण स्वयं शिवाजी।

कवि की इच्छा सिंह वर्णन की है। परन्तु 'सरजा' शब्द श्लिष्ट होने के कारण इसमें शिवाजी और औरंगजेब के ब्यौहार का भी भान होता है।

२–तुही सांच द्विजराज है तेरी कला प्रमान।
तो पै शिव किरपा करी जानत सकल जहान॥

इसमें कवि का इच्छित तात्पर्य तो चंद्रमा की प्रशंसा है, परंतु 'द्विजराज' और 'शिव' शब्द श्लिष्ट होने से भूषण कवि और शिवाजी के व्यवहार का भान होता है।

३–'भूषण' जो करत न जाने बिनु घोर शोर भूलि गये आपनी उँचाई लखे कद की। खोइहौ प्रबल मदगल गजराज एक सरजा सों वैर कै बड़ाई निज मद की॥

यहाँ भी कवि इच्छा हाथी के वर्णन की है, परन्तु पहले उदाहरण की तरह इसमें भी शिवाजी और औरंगजेब के ब्योहार का भान होता है।

४–लता नवल तनु अंग, जाति जरी जीवन बिना।
कहा सिख्यो यह ढंग तरुण अरुण निरदै निरखु॥

इस सोरठा में दोपहर के प्रचंड तापयुक्त सूर्य के तेज से किसी नाजुक लता के सूख जाने का वर्णन है, परन्तु गौर करने से किसी बिरहिनी नायिका की दशा का भी भान होता है।

५–जीवन के दानि हो सुजान हो सरस अति जगत के जीवन को आनँद उमाहे हो। सुजस को पाओ पर स्वारथ को धाओ धरा तपनि मिटाइवे की मति अवगाहे हो। "गोकुल" कहत इन्हें आस रावरे की है जू प्यास इनकी न मेटि देत कहो काहे हो। गरजि घुमरि घनश्याम क्यों बरावत हो कछु चातकीन हूं को अपराध चाहे हो।

इस में कवि की इच्छा बादल और चातकियों के वर्णन की है, परन्तु तनक ही गौर करने से इसमें कृष्ण और गोपियों के व्यौहार का भान मिलता है।

(इसी प्रकार और भी समझ लेना चाहिये)

सूचना–(श्लेष और समासोक्ति का भेद)

१–श्लेष में सबही अर्थ प्रस्तुत समझे जाते हैं।

२–समासोक्ति में प्रस्तुत में अप्रस्तुत का भान सा होता है।

(३०)–परिकर *

दो०–अभिप्राय जहँ क्रिया को सुविशेषण में होय।
अलंकार परिकर तहां बरनत हैं कबि लोय॥

विवरण–जहाँ कोई ऐसा विशेषण लाया जाय जो उस पद की क्रिया से संबंध रखता हो।

(यथा)

१–जानो न नेकु ब्यथा पर की बलिहारी तऊ पै सुजानकहावत।

२–भाल में जाके सुधाधर है वहै साहेबताप हमारो हरैगो।
अंग है जाको विभूति भरो वहै भौन में संपति भूरि भरैगो।
घातक है जो मनोभव को जग पातक वाही के जार जरैगो॥
'दास'जू सीस पै गंग लिये रहै ताकी कृपा कहो को न तरैगो॥

३–चक्रपाणि हरि को निरखि असुर जात भजि दूरि।
रस बरसत घनश्याम तुम तापहरत मुद पूरि॥

४–शीतल करैंगे मेटि ताप त्रिभुवन राम श्याम घन बरन बरसि दान धारा को।

---

* इस अलंकार को फारसी तथा उर्दू में 'सनअत इश्तकाक़' कह सकते हैं।
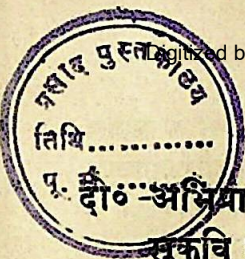
(३१)–परिकरांकुर *

दो०–अभिप्राय जहँ क्रिया को है विशेष्य पद माहिं।
सुकवि सकल बरनन करैं परिकर अंकुर ताहिं॥

(यथा)

१–रतनाकर बासी रमा प्रानन को आधार।
हरि कुबेरपति रावरो हरैं रोग बिकरार॥

२–वदन मयंक ताप त्रय मोचन।

३–सुनहु बिनयमम बिटप अशोका। सत्यनाम करुहरुममशोका।

४–धरनिसुता धीरज धरेउ समय सुधर्म बिचारि।

५–हे हरि कस न हरहु भ्रम भारी॥

६–जम करि मुँह तरहरि पर्‌यो यह धरहरि चित लाय।
विषय तृषा परिहरि अजौं नरहरि के गुणगाय॥

यहाँ 'नरहरि' शब्द साभिप्राय है। जमराज को हाथी (करि) माना तो हाथी को मारने के लिये नरहरि (नृसिंह) समर्थ है।

७-हृषीकेश सुनि नाउँ जाउँ बलि अति भरोस जिय मोरे।
तुलसिदास इन्द्रियसंभव दुख हरे बनिहि प्रभु तोरे॥

८–तुलसिदास भवब्याल ग्रसित तवशरणउरगरिपुगामी।

'हृषीकेश' और 'उरगरिपुगामी' संज्ञायें साभिप्राय हैं, क्योंकि हृषीकेश (हृषीक+ईश=इन्द्रियों का मालिक) ही इन्द्रियसंभव दुख दूर कर सकता है, और उरगरिपुगामी 'गरुड़ पर सवार होनेवाला) ही 'भव ब्याल' से रक्षा कर सकता है।

---

* इस अलंकार को भी फारसी तथा उर्दू में "अनअत इश्तक़ाक़" कह सकते हैं।

(३२)—श्लेष *

दो०—दोय तीन अरु भांति बहु आनत जामें अर्थ ।
श्लेष नाम ताको कहत जिनकी बुद्धि समर्थ ॥

सूचना—इस अलंकार के कुछ उदाहरण और विवरण शब्दालंकार वाले वर्णन में देखो ।

(कुछ उदाहरण)

१—द्विजतिय तारक पूतनामारण में अति धीर ।
काकोदर को दरपहर जय यदुपति रघुबीर ॥

२—सगुन सभूषण सुभ सरस सुबरन सुपद सराग ।
इमि कविता अरु कामिनी लहै जु सो बड़ भाग ॥

३—सुंदर सोहै सुगन्धित अंग अभंग अनंग कला ललिता है ।
तैसी 'किशोर' सोहात सुयोगिन भोगिन हूं को मनोहरता है ।
संग अली अवली रव राजत अंग रसीली बसी करता है ।
कोमलता युत बीर बसंत की वैहर की बनिता कि लता है ॥

४—ढरै मधुमाधुरी पराग सुबरनसनी सरस सलोनी पाप तापन के अन्त की । कामना जुगति की उकुति सरसावत सी छावै मधुराई कल कोकिल के भन्त की ॥ गोकुल कहत भरी गुनन गँभीर सीरी कानन लौं आवति पियूष ऐसे बात की । ऐसी सुखदानी है न जानी जगती में और कविन की बानी वर वैहर वसन्त की ॥

५—पानिप के आगर सराहैं सब नागर कहत 'दास' कोश में लख्यो प्रकाशमान मैं । रज के संयोगतें अमल होत जब तब हरि हितकारी बास जाहिर जहान मैं ॥ श्री को भाय सहजै करत

---

* सूचना—इस अलंकार को फारसी और उर्दू में 'ईहाम' कहते हैं ।

मनकाम, थकै बरनत बानी जा दलन के विधान में। एतो गुण देखो राम साहिब सुजान में, कि बारिज्ज बिहान में, कि कीमत कृपान में॥

सूचना—स्मरण रखना चाहिये कि अर्थ श्लेप अलंकार में बहुधा संदेहालंकार वा विकल्पालंकार से सहायता लीजाती है, परन्तु मुख्यता श्लेषकी होती है इसलिये वही माना जाता है। उदाहरण नं० ३,४ ५ में देखो और समझो।

सूचना—बाबू हरिश्चन्द्र जी ने अपने 'सत्यहरिश्चन्द्र' नाटक में एक दोहा कहा है जो शिव, राजा, कवि, कृष्ण और चन्द्रमा इन पाँचों पर घटित हो सकता है, और सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र पर भी लगता है। दोहा यह है।

दोहा—सत्यासक्त दयाल द्विज प्रिय अघहर सुख कन्द।
जनहित कमला तजन जय शिव, नृप, कवि, हरि, चंद॥

(३३)—अप्रस्तुत प्रशंसा

दो० अप्रस्तुत वर्णन विषे प्रस्तुत बरनो जाय।
अप्रस्तुत परसंस तेहि कहैं कविन के राय॥

विवरण—जिस विषय को कहना हो, उसे स्पष्ट शब्दों में न कहकर इस ढंग से कहें कि वह असली बात लक्षित हो जाय, वहाँ यह अलंकार कहा जायगा। ऐसा कथन पाँच प्रकार से हो सकता है।

दो०—कारज मिस कारण[1] कथन, कारण के मिस काज[2]।
कहुँ सामान्य[3] विशेष[4] ह्वै होत ऐसही साज॥
कहूं सरिस[5] सिर डारि कै कहै सरिस सों बात।
अप्रस्तुत परसंस के पंच भेद अवदात।

---

* इस अलंकार को अंगरेजी में 'मेटानोमी' (Metonomy) कह सकते हैं।

(१) कारज मिस कारण कथन—कारज निबंधना—अर्थात् इष्ट तो है कारण का कथन, पर उसे सीधे शब्दों में न कह कर उसके कार्य का कथन करके वह कारण जनाया जाय।

यथाः—

दो०—मातु पितहिं जनि शोच बसि करसि महीप किशोर

यहाँ परशुराम जी का असल मतलब तो यह कहने का है कि "मैंतुम्हेंमारडालूँगा" पर ऐसा न कहकर कहते हैं कि हे राज-कुमार! "तू अपने माता पिता को शोचबश मतकर"। 'किसी का मारा जाना' यह कारण है, और उसके 'माता पिता का शोच वश होना' यह कार्य है। सो कार्य कहकर कारण जताते हैं।

पुनः—

राधिका के अँसुवान को सागर बाढ़त जात मनो नभ छ्वैहै।
बात कहा कहिये ब्रज की अब बूड़ोई ह्वैहै कि बूड़त ह्वैहै॥

इसमें अश्रुसागर का बढ़ना और ब्रज का बूड़ना जो कार्य रूप है सो कहा, पर असल कारण 'विरह की अधिकता' साफ शब्दों में न कही। इससे यहाँ भी कारज मिस कारणका कथन है।

दो०—गोपिन के अँसुवन भरी सदा असोष अपार।
डगर डगर नै ह्वै रही बगर बगर के बार॥

पुनः—"राधे को बनाय विधि धोये हाथ ताको रंग जमि भयो चन्द हाथ झारे भये तारे हैं"।

यहाँ भी धोवन से चन्द और तारों का होना जो कार्यरूप है कहकर राधिका जी की 'अत्यन्त सुन्दरता' जो कारण है जताई गई है। पुनः—

दो०—तव पदनखकी दुति कछुक धोय गई जल साथ।
तेहि कारण मिलि दधि मथत चंद्र भयो है नाथ॥

यहाँ भी धोत्रन से चन्द्रमा का होना जो कारजरूप है वर्णन करके श्रीकृष्ण के पदनख की 'महान् छटा' जो 'कारणरूप' है सूचित की गई है।

(२)-कारण के मिस काज—कारण निबंधना—अर्थात् जहाँ कार्य तो कहना हो, पर कहा जाय कारण। जैसेः—
कोउकहजबविधिरतिमुखकीन्हा। सारभाग शशिकर हरि लीन्हा।
छिद्र सो प्रगट इन्दु उर माहीं। तेहिं मग देखिय नभ परछाहीं॥

यहाँ रतिमुख की अत्यन्त सुन्दरता-जो कार्यरूप है—न कहकर उसका कारण-(चन्द्रमा का सारभाग) कथन किया गया है। यही कारण मिस कार्य का कथन है। पुनः—

दो०—लीन्हों राधा मुख रचन बिधि ने सार तमाम।
तेहि मग होय अकाश यह शशि में दीखत श्याम॥

सवैया-जोति के गंज में आधो वराय विरंचि रची वृषभानु दुलारी। आधो रह्यौ फिर ताहू में आधो लै सूरज चंद्र प्रभान मे डारी। 'दास' द्वै भाग किये उबरे के तरैयन में छवि एक की सारी। एक ही भाग ते तीनहूं लोक की रूपवती युवतीन सँवारी।

राधे के अंग गोराई सी और गोराई विरंचि वनावन लीनी। कै सत बुद्धि विवेक सों एक अनेक विचारन में मति दीनी। बानिक तैसो बनी न बनावत 'केशव' प्रस्तुत ह्वै गई हीनी। लै तब केसरि, केतकि, कंचन, चंपक, केदलि, दामिनि कीनी।

इन सब कथनों से, जो कारणरूप हैं, 'राधा के मुख की अत्यन्त छबि' जो कार्य रूप है प्रगट होती है। इसलिये ये सब कारण मिस कार्य का कथन है।

'गर्भन के अर्भक दलन परशु मोर अति घोर'। यहां भी

परशुराम ने कारणरूप परशु का वर्णन करके मारणरूप कार्य को सूचित किया है। ऐसा ही यह भी।

तदपि कठिन दशकंठ सुनु छत्रिजात कर रोष।

(३)-सामान्य मिस विशेष का कथन-सामान्यनिबंधना-जहाँ कोई सामान्य सी बात कहके विशेष का तात्पर्य जताया जाता है। यथा:—

सूपनखा की गति तुम देखी। तदपि हृदय नहिं लाज विशेषी।

इस कथन में 'सूपनखा की दशा' सामान्य रीति से कह कर यह प्रस्तुत जताया गया कि तुम्हें रामचन्द्र के समान सबल पुरुष से वैर न करना चाहिये।

दो०-धरैं न मन में शोच जे, बैर प्रबल सों ठानि।
सोवत आगि लगाय ते सदन माँझ पट तानि॥

पुनः--बड़े प्रबल सों बैर करि करत न सोच बिचार।
ते सोवत बारूद पर पट में बांधि अँगार॥

ऊपर के इन दोनों दोहों में कोई व्यक्ति किसी व्यक्ति का किसी विशेष सबल पुरुष से बैर करने की मनाही करना चाहता है, पर उस विशेष पुरुष का नाम न लेकर सामान्य भाव से एक साधारण बात कहता है।

(४)-विशेष मिस सामान्य का कथन-विशेष निबन्धना।

(यथा)

सवैया-'दास' परस्परप्रेम लखो गुणछीरकोनीर मिलेसरसातु है।
नीरै वेचावत आपने मोल जहाँजहाँ जायकैछीर बिकातु है।
पावक जारन छीरै लगैतब नीर जरावत आपनो गातु है।
नीर की पीर निवारन कारन छीर घरीही घरी उफनातु है।

यहाँ जो छीर और नीरकी प्रीति का वर्णन किया गयाहैसो

अप्रस्तुत है अर्थात् कवि का प्रयोजन छीर नीर की प्रीतिकेवर्णन से नहीं है, वरन यह विशेष उदाहरण देकर प्रस्तुत बात यह सूचित करता है कि सबलोगोंको प्रीति ऐसी ही करनी चाहिये

दो०–धन्य शेष सिर जगत हित धारत भुविको भार
बुरो बाघ अपराध बिन मृग को डारत मार ॥

इसमें शेष और बाघके अप्रस्तुत वर्णनसे यह प्रस्तुत जताया गया कि बड़े होकर सबका भार अपने सिर लेना अच्छा काम है और सशक्त होकर निरपराधों को सताना बुरा काम है॥

दो०-निज मंडल मधि राखि मृग मृगलांछनभोचंद ।
मृगपति भो मृग मारिकै सिंह सुसदा स्वछंद ॥

इस दोहे में चन्द्रमा और सिंह के विशेष उदाहरणों से यह सूचित किया गया कि अयोग्य को साथ रखने से कलंक लगता है और उसको विनष्ट कर देने से प्रशंसा होती है।

दो०–काटि लेत तरु बाढ़ई सूधे सूधे जोय ।
बन में बांके वृक्ष को काटत है नहिं कोय ॥

इस दोहा के विशेष उदाहरण से सामान्यतया यह प्रस्तुत निकलता है कि सीधेपन से दुख होता है और कुटिल लोगोंको सताने की कोई इच्छा ही नहीं करता।

(५)–सरिस के सिर डारि कै सरिस से बात कहना *
(इसी को सारूप्य निबन्धना और अन्योक्ति भी कहते हैं)

दो०–भयोसरितपति सलिलपति अरु रतनन कीखानि
कहा बड़ाई समुँद की जु पै न पीजत पानिं ॥

यहां समुद्र पर ढार कर यह बात किसी ऐसे धनी के

---

* दो०–औरो एक पिछान है मानि लेहु परतीत ।
समासोक्ति भूषण जू है ताको यह बिपरीत ॥

लिये कही गई है, जो धनी तो बहुत बड़ा है, परंतु उससे किसी को कुछ सुख नहीं प्राप्त होता है। कवि की इच्छा (प्रस्तुत) यही है, समुद्र का वृत्तान्त अप्रस्तुत है।

पुनः–"काल कराल परै कितनो पै मराल न ताकत तुच्छ तलैया"।

यहाँ हंस पर ढार कर यह बात कही गई है कि विवेकी पुरुष दुःख पानेपर भी अनुचित कार्य करनेकी ओर नहीं झुकते।

पुनः–मानससलिलसुधाप्रतिपाली। जियेकिलवणपयोधिमराली
नवरसाल बन बिहरनशीला। सोहे कि कोकिल विपिनकरीला

यहाँ हँसिनी और कोयल पर ढार कर यह जताया गया है कि सुकुमार और सुखभोगिनी स्त्रियाँ बनवास का कष्ट सहन नहीं कर सकतीं।

पुनः—

सुनु दशमुख खद्योत प्रकासा। कबहुं कि नलिनी करहिविकासा

यहाँ सीता जी कमलिनी पर ढार कर रावण से अपना वृत्त कहती हैं।

कवित्त

हारे बाटवारे जे बिचारे मंजलिन मारे दुखित महा रे तिन को न सुख तैं दियो। बनके जे पंछी तिनहू के काम को न कछू साँझ समै आय बिसराम उनना लियो। आपनेहू तनकी न छाया करि सक्यौ मूढ़ 'दयानिधि' कहै जग जन्म ही वृथा गयो। घाम को न आड़ भयो फूल फल को न लाड़ एरे ताड़ वृक्ष एतो बढ़िकै कहा कियो।

यहाँ भी अप्रस्तुत ताड़वृक्ष के वर्णन से किसी ऐसे बड़े मनुष्य का वर्णन प्रस्तुत है जिससे किसी को कुछ लाभ नहीं पहुँचता।

इसी अलंकार को लेकर गोसाईं 'दीनदयालगिरि' ने 'अन्योक्तिकल्पद्रुम' नाम का एक छोटा सा ग्रंथ ही रच डाला है।

दो०-नहिं पावस ऋतुराज यह सुनु तरुवर मति भूल।
अपत भये बिन पाइहै क्यों नव दल फल फूल ॥
स्वारथ सुकृत न श्रम वृथा देखु बिहंग बिचारि।
बाज पराये पानि परि तूँ पंछीन न मारि ॥

(सूचना)

(अप्रस्तुतप्रशंसा, समासोक्ति और पर्यायोक्ति का भेद)

१—अप्रस्तुतप्रशंसा में अप्रस्तुत से प्रस्तुत का ज्ञान होता है।

२—समासोक्ति में प्रस्तुत वर्णन से किसी अप्रस्तुत का भी भान होता है।

३—पर्यायोक्ति में प्रस्तुत का कथन कुछ घुमा फिरा कर किया जाता है, सीधे सीधे नहीं, उसमें अप्रस्तुत का कोई आभास नहीं होता।

(३४)—प्रस्तुतांकुर

दो०-प्रस्तुत में प्रस्तुत जहां प्रगटत अंकुर न्याय।
प्रस्तुत अंकुर कहैं तेहि बुद्धिमान कविराय ॥

विवरण-जब कोई बात इस प्रकार कही जाती है कि जिससे कही जाय और एक दूसरा व्यक्ति जिसको सुनाकर कही जाय दोनों को लाभ पहुँचै, तब यह अलंकार होता है। कहने वाले का तात्पर्य (प्रस्तुत) दोनों से कथन करने का होता है। एक से तो प्रत्यक्ष कहता है, और दूसरे को सुनाने का तात्पर्य होता है। इसप्रकार मानो प्रस्तुत में से एक अंकुर निकलता है। प्रस्तुत बात एक के लिये होती है और वह अंकुरवत् निकली हुई (प्रस्तुत) बात दूसरे के लिये। दूसरे को सुनाकर दूसरे के प्रति जो उपालंभ या उपदेश दिया जाता है उस कथन में यह अलंकार अवश्य होता है।

(यथा)

दो०-सीत बात आतप सही राखि तेरियै आस।
तऊ पपीहा की जलद तैं न बुझाई प्यास॥

यहाँ 'जलद' से तो प्रत्यक्ष ही कथन है, परन्तु कहनेवाले का तात्पर्य एक अन्य जन को सुनाने का भी है जिससे वह कुछ आशा रखता था।

दो०-अलि कदंब तरु पाय, सुमन भरो मकरंद मय।
तजि करील पै जाय, निरस अपत परसे कहा॥

यहाँ प्रत्यक्ष कथन भौंरे से और सुनाना एक ऐसे व्यक्ति को है जो सर्वाङ्गसुन्दर वस्तु पाकर भी एक नीरस वस्तु पर प्रेम रखता है।

सूचना—यह अलंकार गूढ़ोक्ति से मिलता जुलता है। दोनों का भेद 'गूढ़ोक्ति' की सूचना में दिखलाया गया है। (देखो पृष्ठ २१०)

(सवैया)

दल देखो नहीं अस जाड़ो बड़ो अरु घाम घनो जल क्यों हरिहै।
कहि 'केशव' बात बहै, दिन दाव दहै, घर धीरज क्यों धरिहै॥
फलिहै फुलि नाहिं कि तौलौं तुही कहि तो पहँ भूख सही परिहै।
कछु छांह नहीं सुख सोभ नहीं रहि कीर करीर कहा करिहै॥

यहाँ कीर प्रति तो प्रगट कथन है, पर सुनाना है एक ऐसे व्यक्ति को जो एक धनधान्यसम्पन्न पुरुष को छोड़कर (करील वृक्ष समान पत्ररहित) एक निर्धन मनुष्य का आश्रय लेना चाहता है। पुनः—

निपट कठोर घोर कंटकन पूलो तन मूढ़ मन महा कहा गूढ़ गुन गावैगो। कहै रघुनाथ तातें आपनो अगारो चेत हेत मत करै जानि ही में सोच छावैगो। गंध को न लेस मकरंद की न बूंद यामें छाया हू न सुखद संताप तन तावैगो। साहेब

सुजान अलि मेरी कही मान पर अपत करील सेये तू न सुख पावैगो।

(३५)–पर्यायोक्ति ❀

दो०–परयायोक्ति प्रकार द्वै कछु रचना सों बात।
मिस करि कारज साधिये जो हित चितहि सोहात॥

(१)–"कछु रचनासों बात"–जो बात कहनी हो उसे सीधे शब्दों में न कहकर कुछ घुमा फिरा कर कहना। (कोई २ इस अलंकार में व्यंग मुख्य मानते हैं, परन्तु हम ऐसा नहीं मानते) जैसेः—कहना हो कि 'अमुक व्यक्ति मर गया'। इस बात को इन्हीं शब्दों में न कहकर यों कहैं कि "अमुक व्यक्ति को सुरराज ने अपने पास बुला लिया" यह पर्यायोक्ति है।

सीधे यह न कहकर कि "भाऊसिंह हरिभक्त है" मतिराम जी कहते हैंः—

दो०–जाके लोचन करत हैं कुवलय कंज प्रकास।
सो भाऊ भूपाल के करत हियें में बास॥

पुनः–कत भटकत गावत न क्यों वाही के गुणगाथ।
जाके लोचन ही किये बिन बलयनि रति हाथ॥

यहाँ स्पष्ट शब्दों में यह न कहकर कि 'शङ्कर का भजन कर' यों कहा कि क्यों भटकता फिरता है, उसी के गुणगाथ क्यों नहीं गाता, जिसके नेत्रों ने रति के हाथों को बिना कंकण के कर दिया (अर्थात् काम को जलाकर रति को विधवा कर दिया था)

❀ इस अलंकार को अङ्गरेजी में 'पेरीफ्रेसिस' (Periphrasis) कहते हैं।

पुनः-दो०-सीता हरन तात जनि कहेउ पिता सन जाय।
जो मैं राम तो कुल सहित कहहि दशानन आय॥

इसमें राम जी ने सीधे शब्दों में यह न कहकर कि "मैं रावण को मारूँगा" इसप्रकार कहा जैसा कि दोहे के उत्तरार्द्ध से प्रगट है।

(२) "मिस करि कारज साधिये" जहां किसी बहाने से इच्छित कार्य के साधन का वर्णन हो, यह दूसरी पर्यायोक्ति होगी। यथा-

नाथ लषन पुर देखन चहहीं। प्रभु सकोच डर प्रगट न कहहीं॥
जो राउर अनुसासन पाऊँ। नगर दिखाय तुरत लै आऊँ॥

यहां स्वयं राम जी को जनकपुर देखने की इच्छा थी, पर लक्ष्मण की इच्छा का बहाना करके आज्ञा मांगते हैं। पुनः—

दो०-देखन मिस मृग बिहँग तरु फिरै बहोरि बहोरि।
निरखि निरखि रघुबीर छबि बाढ़ै प्रीति न थोरि॥

पुर बालक कहि कहि मृदु बचना। सादर प्रभुहिं दिखावहिं रचना।

दो०-सब शिशु यहि मिस प्रेम बश परसि मनोहर गात।
तनु पुलकहिं अति हर्ष हिय देखि देखि दोउ भ्रात॥

पुनः-पूसमास सुनि सखिन सन साईं चलत सवार।
लै कर बीण प्रबीण तिय गायो राग मलार॥

यहां मलार राग गाकर पानी बरसा देने से स्वामी का बिदेश-गमन रोक दिया। इस गाने के बहाने से इच्छित कार्य साधन किया।

सूचना-इस अलंकार में मिस, ब्याजादि शब्दों का कथन अनिवार्य नहीं है। चाहे कथन करै चाहै और प्रकार से कहै। कैतवापन्हुति में एक वस्तु के छिपाने के हेतु से मिस या ब्याज से दूसरी वस्तु प्रगट की जाती है, और इस अलंकार में किसी विशेष इच्छित कार्य साधन के लिये कोई युक्तियुक्त क्रिया की जाती है जिसे केवल मिस वा छल कहा जा सकता है।

(३६)—व्याजस्तुति (द्विधा)

(प्रथम)

दो०—देखत तो निन्दा लगे समुझे अस्तुति होय।
व्याजस्तुति भूषण सबै ताहि कहैं कबि लोय।

दो०—कहा कहौं कहत न बनत सुरसरि तेरी रीति।
ताके तू मूंड़े चढ़ै जो आवै करि प्रीति॥

इसे देखने में तो गंगा की निंदा सी जान पड़ती है, समुझने से यों स्तुति होती है कि जो प्रेम सहित तेरे पास आता है उसे तू महादेव बना देती है और फिर उसकी जटा में बैठ जाती है।

पुनः—भसम जटा विष अहि सहित गंग कियो तैं मोहिं।
भोगी तें जोगी कियो कहा कहौं अब तोहिं॥

दोहा—जमुना तुम अविवेकिनी कौन लियो यह ढंग।
पापिन सों निज बन्धु को मान करावत भंग॥

(पद्माकरकृत गंगालहरी से)

जोग जपाजागै छाँड़ि जाहु ना परागै भैया मेरी कही आँखिन के आगे सुतौ आवैगी। कहै पदमाकर न पैहै काम सरसुती साँचहू कलिंदी कान करन न पावैगी। लैहै छीन अंबर दिगंबर कै जोरावरी बैल पै चढ़ाय फेरि शैल पै चढ़ावैगी। मुंडन के माल की भुजङ्गन के जाल की सु गंगा गजखाल की खिलत पहिरावैगी॥

एक महापातकी स्वगात की दशा बिलोकि देत यों उराहनो सु आठहूं पहर है। मीच समै तेरो उत आप गयो कंठ इत व्यापि गयो कंठ कालकूट सो जहर है। आप चढ़ी शीश

मोहिं दीन्ही बकसीस औ हजार सीसवारे की लगाई अटहर है। मोहि करि नंगा अंग अंगन भुजंगा बांधो एरी मेरी गंगा तेरी अद्भुत लहर है।

बरवा—कुजनपाल गुणवर्जित अकुल अनाथ।
कहहु कृपानिधि राउर कस गुणगाथ॥

सूचना—पद्माकरकृत 'गङ्गालहरी' में इस अलंकार के बहुत उत्तम उदाहरण हैं। विनयपत्रिका में 'बावरो रावरो नाह भवानी" बाला पद इसी अलंकार में कहा गया है।

(दूसरी)

दो०—कीन्हे पर अस्तुति जहाँ परअस्तुति दरसाय।
ताहू को व्याजस्तुतै कहैं कविन के राय॥

(यथा)

जासु दूत बल बरणि न जाई। तेहि आये पुर कौन भलाई॥

यहाँ दूत की बड़ाई से दूत के मालिक (रामचन्द्र) की बड़ाई झलकती है।

या वृन्दावन बिपिन में बड़भागी मम कान।
जिन मुरली की तान सुनि किय हर्षित अँग आन॥

यहाँ कानों की बड़ाई से मुरली की अत्यन्त बड़ाई प्रगट होती है।

(३७) व्याजनिन्दा * (द्विधा)

(प्रथम)

दो०—अस्तुति कीन्हे हू जहाँ निंदा ही दरसाय।
ताहिं व्याजनिंदा कहैं कवि कोविद हरषाय॥

---

* नोट—इस अलंकार को अंगरेजी में आयरनी (Irony) और फारसी तथा उर्दू में 'हजो मलीह' कहते हैं।

(यथा)

१-सेमर तू बड़भाग है कहा सराह्यो जाय।
पंछी करि फल आस तोहि निस दिन सेवहिं आय

२-राम साधु तुम साधु सुजाना। राममातुतुमभलिपहिचाना॥
३-धन्य कीश जो निज प्रभु काजा। जहँ तहँ नाचहिंपरिहरिलाजा॥
नाचि कूदि करि लोग रिझाई। पति हित करत कर्म निपुनाई॥

४-'अहो मुनीश महा भटमानी'

५ नाककान बिनु भगिनिनिहारी। क्षमा कीन्ह तुम धर्म बिचारी॥
लाजवंत तुम सहज सुभाऊ। निजगुण निजमुख कहसि न काऊ॥

(दूसरी)

औरै की निन्दा किये पर की निंदा होय॥
निंदा ब्याज तहाँ कहैं कबि कोबिद सब कोय॥

(यथा)

दई निरदई सों भई 'दास' बड़ीयै भूल।
कमलमुखी के जिन कियो हिय कठिनई अतूल॥

यहाँ दई की निन्दा से कमलमुखी (नायिका) की निन्दा झलकती है।

दो० जु हरि हमारो जीव निज ताहि चल्यो लै दूर।
को सो जो यहि क्रूर को धत्यो नाम अक्रूर॥

यहां अक्रूर की निन्दा से नामकरण करने वाले की भारी निन्दा प्रगट होती है।

(३८)--आक्षेप

दो०—कारज के आरम्भ ही जहँ कीजै प्रतिषेध।
आक्षेपा तासों कहत तासु तीन हैं भेद॥

उक्ताक्षेप सु प्रथम है दुतिय निषेधाक्षेप ।
तीजो सब कविजन कहैं सुन्दर व्यक्ताक्षेप ॥

विवरण—आक्षेप का अर्थ है 'बाधा' वा 'मुमानियत,' अतः आक्षेपालंकार से मतलब है ऐसी क्रिया वा ऐसा कथन करना जिससे कार्य में बाधा डालने का तात्पर्य सिद्ध हो । इसके तीन भेद हैं ।

१—(उक्ताक्षेप)

जहाँ कथित निज बात को समुझि करिय प्रतिषेध ।
उक्ताक्षेप तहाँ कहैं कविजन मतिउतषेध ॥

जहाँ अपनी ही कही हुई प्रथम बात का निषेध करके दूसरी बात कही जाय ।

(यथा)

१-तुव मुख विमल प्रसन्न अति रह्यो कमल सो फूलि ।
नहिं नहिं, पूरन चन्द सो कमल कह्यौं मैं भूलि ॥
२-प्रभु प्रसन्न है दीजिये स्वर्ग धाम को बास ।
अथवा याते भल कहा, करहु आपनो दास ॥
३-सानुज पठइय मोहि बन, कीजिय सबहिं सनाथ ।
नतरु फेरिये बन्धु दोउ, नाथ चलौं मैं साथ ॥

सूचना—स्मरण रखना चाहिये कि इसमें निज कथित प्रथम बात का निषेध इसलिये किया जाता है कि दोबारा उससे बढ़कर बात कही जाय ।

२- (निषेधाक्षेप)

दो०—पहले करै निषेध जो फिर ठहरावै ताहि ।
कहत निषेधाक्षेप तेहि कविजन सकल सराहि ॥

विवरण—पहले किसी बात से इनकार किया जाय फिर अन्य प्रकार से उसकी स्थापना की जाय। यथाः—

१—कवि न होउँ नहिं चतुर कहाऊं। मतिअनुरूप रामगुणगाऊँ।

२—दशमुख मैं न बसीठी आयो। अस बिचारि रघुनाथ पठायो।

३—मैं न मान मेटो चहति कहति यहै उर धारि।

४—सरजा सिवा पर पठावत मुहीम काज हजरत हम मरिबे ते नाहिं डरते। चाकर हैं उजुर कियो न जाय नेक पै कछु दिन उबरते तो घने काज करते।

५—मोहिं तू जानत है कपि है यह मैं कपि हौं नहीं, काल हौं तेरो।

३—(व्यक्ताक्षेप)

दो०- करिबे की आज्ञा प्रगट छिप्यो निषेध जु होय।
व्यक्ताक्षेप कहैं तहाँ कवि कोबिद सब कोय॥

(यथा)

दो०—राज देन कहि दीन बन मोहि न शोच लवलेश।
तुमबिन भरतहिं भूपतिहिं प्रजहिं प्रचण्डकलेश॥

पुनः—सुख सों पीय सिधारिये पग पग होय कल्यान।
हौं हूं जनमौंगी तहाँ तुव जेहि देश पयान॥

क०—जो हौं कही रहिये तो प्रभुता प्रगट होत, चलन कहौं तो हित हानि नाहिं सहनो। भावै सो करहु तो उदास भाव प्राणनाथ, साथ ले चलहु कैसे लोकलाज बहनो। केशौराय की सौं तुम सुनहु छबीले लाल चले ही बनत जो पै नाहीं राज रहनो। तैसिये सिखाओ सीख तुमही सुजान पिय तुमहिं चलत मोहिं जैसो कछु कहनो।

(३६)—विरोधाभास ❀

दो०-द्रव्य क्रिया गुण जाति में भासत जहाँ विरोध।
कहत विरोधाभास तेहिं बुध जन सहित सुबोध॥

विवरण—जहाँ विरोधी पदार्थों का वर्णन किया जाय वह विरोधाभास अलंकार है। ऐसा वर्णन वर्णनीय की विशेषता वा उत्कृष्टता जताने के लिये होता है। प्रस्तार करने से इसके दस भेद हो जाते हैंः—

जैसेः—

जाति का विरोध (१) जाति से (२) गुण से (३) क्रिया से (४) द्रव्य से।

गुण का विरोध (१) गुण से (२) क्रिया से (३) द्रव्य से

क्रिया का विरोध (१) क्रिया से (२) द्रव्य से

द्रव्य का विरोध (१) द्रव्य से।

सूचना—कुछ उदाहरण लिख देते हैं। पाठक स्वयं विचार कर लें कि किसका किससे विरोध है।

(सूरसागर से)

१-चरण कमल बन्दौं हरि राई।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै अन्धे को सब कुछ दिखराई।
बहिरो सुनै मूक पुनि बोलै रंक चलै सिर छत्र धराई।
सूरदास स्वामी करुणामय बार बार बन्दौं तेहि पाई।

(रामायण से)

२-भरद्वाज सुनु जाहि जब होत विधाता बाम।
धूरि मेरु सम जनक जम ताहि ब्याल सम दाम।

❀ इस अलंकार को फारसी तथा उर्दू में 'मुहतमिलुल् ज़िद्दैन' कहते हैं।

३-तृण ते कुलिश कुलिश तृण करई।
४-गरल सुधा रिपु करै मिताई। गोपद सिन्धु अनल शितलाई
गरुअ सुमेर रेणु सम ताही। राम कृपा करि चितवहिं जाही।
५-पवन अचल गिरि रेणु पुनि जलधि नहीं गंभीर।
धरा अतिहिं लघु होति है कृपा दृष्टि रघुबीर॥

पुनः-

६-झाँकी रघुबीर की बिलोकि कै अचेतन भे चेतन, अचेतनहू चेतन भे देख्यौ आज॥
७-सो अज प्रेम भगति बश कौशल्या की गोद।
८-कुलिश कठोर कूर्म पीठि ते कठिन अति हठि न पिनाक काहू चपरि चढ़ायो है। तुलसी सो राम के सरोजपानि पर्सत ही टूटो मानो बारे ते पुरारि ही पढ़ायो है।
९-चा मुख की मधुराई कहा कहौ मीठी लगै अँखियान लुनाई।
१०-लाल तिहारे दृगन की कहौ रीति यह कौन।
जासों लागैं पलक दृग लागै पलक पलौ न॥
११-तंत्री नाद कवित्त रस सरस राग रति रंग।
अनबूड़े बूड़े तिरे जे बूड़े सब अंग॥
१२-कितो मिठास दयो दई इते सलोने रूप।

सूचना-(१) यह अलंकार अद्भुत रस की कविता के लिये बड़ेकाम का है। (२) इसी से मिलता जुलता विषमालंकार का 'दूसरा भेद' है। दोनों की पहँचान भली भांति कर लेनी चाहिये। दोनों में भेद यह है कि इस विरोधाभास में जो विरोध कथन किया जाता है वह केवल आभासमात्र (नितान्त झूँठा) है। विषमालंकार के दूसरे भेद में जो विरोध कहा जाता है वह सत्य होता हैं और केवल कार्यकारण के संबंध ही में कहा जाता है।

(४०)-विभावना

किसी घटना के कारण के सम्बन्ध में कोई विलक्षण कल्पना की जाय उसे 'विभावना' कहते हैं। इसके छः भेद हैं:—

(प्रथम)

दो० कारण बिनही होत है कारज कौनो सिद्ध ।

(यथा)

१-बिनु पद चलै सुनै बिनु काना । कर बिनु कर्म करै विधि नाना ।
आनन रहित सकल रस भोगी । बिन बाणी बकता बड़ योगी
२-केशव कहि न जाय का कहिये ।
देखत तव रचना विचित्र अति समुझि मनहिं मन रहिये ।
शून्य भीति पर चित्र रंग नहिं तनु बिनु लिखा चितेरे ।
... ...
बदन हीन सो ग्रसै चराचर पान करन जे जाहीं ।
३-दो०-सुनत लखत श्रुति नैन बिनु रसना बिनु रस लेत
बास नासिका बिनु लहै, परसै बिना निकेत ॥

(दूसरी)

दो०-हेतु अपूरण ते जहां कारज पूरण होय ।

(यथा)

१-काम कुसुमधनु सायक लीन्हे । सकल भुवन अपने बस कीन्हें ।
२-तोसो को शिवाजी जेहि दो सौ आदमी सों जीत्यो जंग सरदार सौ हजार असवार को ।
३-राजकुमार सरोज से हाथन सों गहि शंभु शरासन तोर्‌यो ।
४-शंकर पायन में लगु रे मन थोर ही बातन सिद्धि महाई ।
५-दो०-मंत्र परमलघु जासुबस विधि हरिहर सुर सर्व
महामत्त गजराज कहँ बस करु अंकुश खर्व ॥

(तीसरी)

दो०-प्रतिबंधक के होत हू होय काज जेहि ठौर ।

१–अति विचित्र गति रावरी जग जाहर जसवंत।
तेज छत्रधारीन हू असहन ताप करंत।
२–रखवारे हति विपिन उजारा। देखत तोहिं अछय जेइ मारा।
३–दो०–नैना नेक न मानही कितो कहौं समुझाय।
ये मुँहजोर तुरंग लौं ऐंचत हू चलि जाँय॥
४–दो०–तुव बेणी नागिन रहै बांधी गुनन बनाय।
तऊ बाम ब्रजचन्द को बदाबदी डसि जाय॥

सूचना—तऊ, तौभी, इस अलंकार के वाचक हैं।

(चौथी)

दो०–जाको कारण जो नहीं उपजत ताते तौन॥

१–सवैया-चंपक की लतिका तें सुबास सुमालती की पसरै सुखदैन री। कौल के कोश ते गंध गुलाब की आवत है लखि दायक चैन री। 'गोकुलनाथ' कुहू निसि में यह राका की राति की दाहऽब है न री। देखु कपोत के कंठ ते आली कढ़ैं कल कोकिल को वर बैन री॥
२–दो०-भयो कंबु ते कंज इक सोहत सहित विकास
देखहु चंपक की लता, देत गुलाब सुबास॥
३–बन बिहार थाकी तरुनि खरे थकाये नैन।
४–भयो तात निश्चर कुल भूषण।
५–बीणा नाद ज़ु शंख सों होत सुनौ दै ध्यान।

(पांचवीं)

दो०–बरनत हेतु विरुद्ध ते उपजत है जहँ काज।
१–सिय हिय शीतल भो लगे जरत लंक की झार॥
२–आनन ऐन सुधाको हहा तेहिते इतनो विषबैन बकै तू।

३-तुव मुख रवि बालातप जु मरुनायक जसवंत।
अन्य नृपन के कर कमल युत संकोच करंत॥
४-क्यौं न उतपात होइ वैरिन के भुण्डन में कारे घन उमड़ि अँगारे बरसत हैं।

(छठीं)

दो०-कारज सों जहँ होति है कारण की उतपत्ति।

(यथा)

दो०-तुव कृपान धुव धूम तें भयो प्रताप कृशानु।
२-और नदी नदन तें कोकनद होत तेरो कर कोकनद नदी नद प्रगटत है।
दो०-कर कलपद्रुम सों कस्यौ जस समुद्र उतपन्न।
४-हाय उपाय न जाय कियो व्रज बूड़त है बिनु पावस पानी।
धारन ते अँसुवान की है चखमीनन तें सरिता सरसानी॥

(४१)-विशेषोक्ति

दो०-विद्यमान कारण बन्यो तऊ न फल जहँ होय।
ताहि विशेषोकति कहैं कवि कोविद सब कोय॥

(यथा)

१-हाथी हजारन के बल 'केशव' खैंचि थके पट को डर डारे। द्रौपदी को दुहसासन पै तिल अंग तऊ उघरो न उघारे॥
२-त्यौं त्यौं प्यासेई रहत ज्यौं ज्यौं पियत अघाय।
सगुन सलोने रूप की जु न चख-तृषा बुझाय॥
३-लिखन बैठ जाकी सबिहि गहि गहि गरब गरूर।
भये न केते जगत के चतुर चितेरे कूर॥

४–दौलति इन्द्र समान बढ़ी पै खुमान को नेक गुमान न आयो।
५–लाग न उर उपदेश, जदपि कह्यौ शिव बार बहु।

(४२)–असंभव

दो०–अनहोनी सी बात कछु होय असम्भव सोय।

(यथा)

१–जोग सिखावन को हम को बहुलो तुम से उठि धावन पैहैं।
ऊधो नहीं हम जानती तीं मनमोहन कूबरी हाथ बिकैहैं॥
२–ऐसो कौन जानत हो ए हो कवि 'रघुनाथ' बूड़ि घरी द्वै लौं तरे पानी ही के लरिहैं। सीस पर चढ़ि आपु ताली दै करत नृत्य नाथि ब्याल काली कालीदह ते निकरिहैं।
३–को जानै थो गोपसुत गिरि धारैगो आज।
४–यह को जानत हो जु कपि जैहै लंका जारि॥
५–जासों वैर करि भूप बचै ना दिगन्त ताके दन्त तोरि तखत तरे ते आयो सरजा।

सूचना–'कौन जानता था कि' या इसी भाव के अन्य शब्द इस अलंकार के सूचक हैं।

(४३)–असंगति

कारण कारज को जहाँ लखौ विरोधाभास।
ताहि असंगति जानिये कवि जन सहित हुलास॥

[असंगति अलंकार के तीन भेद]

(प्रथम)

दो०–कारण कहुँ कारज कहूं देश काल को बीच।
कहैं असंगति प्रथम तेहि कविजन बुद्धि अनीच।

(यथा)

१–सीतहि लै दसकंध गयो पै गयो है विचारो समुंदर बाँध्यो।

२–और करै अपराध कोउ और पाव फल भोग।
अति विचित्र भगवन्त गति को जग जानै जोग।

३–कोयल मदमाती भई झूमत अम्बा मौर।

४–महाराज शिवराज चढ़त तुरंग पर ग्रीवा जाति नै करि गनीम अतिबल की। भूषन चलत सरजा की सैन भूमि पर छाती दरकत है खरो अखिल खल की। कियो दौरि घाव उमरावन अमीरन पै गई कटि नाक सिगरेई दिली दल की। सूरति जराई कियो दाह पातसाह उर स्याही जाय सब पातसाही मुख झलकी।

(दूसरी)

दो०—और ठौर करनीय जो करै और ही ठौर।
द्वितिय असंगति कहैं तेहि जे कविता सिरमौर।

१—पहिर कंठ बिच किंकिणी कस्यो कमर बिच हार।

१–पायन की सुधि भूलि गई अकुलाय महाउर आँखिन दीन्हों।

(तीसरी)

दो०–काज कियो चाहत प्रथम तासों करै विरुद्ध।
ताहि असंगति तीसरी बरनत जे मतिशुद्ध।

१–राज देन कहँ शुभ दिन साधा। कह्यो जान बन केहि अपराधा॥

२–प्रगट भये घनस्याम तुम जग प्रतिपालन हेत।
नाहक बिथा बढ़ाय कै प्रेमिन के जिय लेत॥

३- प्रगट भयो है जलद तू जग को जीवन दान।
मेरो जीवन लेत है कौन बैर मन आन।
४ मोह मिटावन हेत प्रभु लीन्हों तुम अवतार।
उलटो मोहन रूप धरि मोहीं सब ब्रजनार।
४—सवैया काज महाऋतुराज बली के यहैं बनि आवत है लखते ही
जात कह्यौ न कहा कहिये 'रघुनाथ' कहै रसना एक पेही
साल रसाल तमालहिं आदि दै जेतिक वृक्ष लता बन जेही।
नौ दलकीवहि को प्रगट्यो पर कै पतझार दियो पहिले ही॥

(४४)—विषम

(अनमिल वस्तुओं वा घटनाओं के वर्णन में विषम अलंकार होता है)

(प्रथम)

अनमिल अनमिल वस्तु को वर्णन है जेहि ठौर
प्रथम विषम तेहि कहत हैं सकल सुकवि सिरमौर॥

(यथा)

१--मैं कै बा बिनती करी मान ठानि दुख दै न।
कहाँ मधुर मृदु मुख कहाँ कठिन काठ से बैन।
२—जोग कहाँ मुनि लोगन जोग कहाँ अबला गति है चपलासी।
श्याम कहाँ अभिराम सुरूप कुरूप कहाँ वह कूबरी दासी।
३ -कहँ कुम्भज कहँ सिन्धु अपारा।
४—राजकुमार के कंज से पाणि कहाँ कहँ शंभुशरासन व्रज सों।
५--कहाँ सीप मुक्ता कहाँ कहाँ कमल कहँ पंक।
कहँ कस्तूरी मृग कहाँ, बिधि बुधि है सकलंक।

६—को कहि सकै बड़ेन की लखे बड़ी हू भूल।
दीन्हे दई गुलाब के इन डारन ये फूल।

७-जेइविधि तुमहिं रूप अस दीन्हा। तेइ जड़बर बाउरकसकीन्हा।
कस कीन्ह बर बौराह जेइ विधि तुमहिं सुन्दरता दई।
जो फल चहिय सुरतरुहिं सो बरबस बबूरहिं लागई॥

८-खारो कियो है पयोनिधि को पय कारो कियोपिकसोअनुमानो
कंटक पेड़ गुलाव किये अरु चातक बारहु मास तृषानो।
पंक को अंक कियो है मयंक में आग कियो है चकोरको खानो
'सागर मिंत' सबै परखा कर हंसपती हरबाहन जानौ।

(दूसरा) *

दो०-कारण औरै रूप को कारज औरै रूप।
विषम अलंकृत दूसरो बरनत है कविभूप॥

१-खड्ग असित जसवंत को प्रगट कर्‌यो जस सेत।
श्याम गौर दोउ मूरति लछिमन राम।
इनते भइ सित कीरति अति अभिराम॥

२—उपजे जदपि पुलस्ति कुलपावन अमल अनूप।
तदपि महीसुर साप बस भये सकल अघरूप॥

३—या अनुरागी चित्तकी गति समुझै नहिं कोय।
ज्यौं ज्यौं बूड़ै श्याम रंग त्यौं त्यौं उज्वल होय॥

४-श्रीसरजा शिव तो जस सेत सों होत हैं बैरिनकेमुंहकारे
भूषन तेरे अरुन्न प्रताप सपेद लखे कुनबा नृपसारे

*विषमालंकार के इस भेद को फारसी तथा उर्दू में "सनअत तजाद" कह सकते हैं।

५-भूषन भनत महाबीर बलकन लाग्यो सारी पातसाहीके उड़ाय गये जियरे। तमक ते लाल मुख सिवा को निरखि भये स्याह मुख नौरँग सिपाही मुख पियरे।

(तीसरा) *

दो०· और भलो उद्यम किये होत बुरो फल आय।
ताहि विषम तीजो कहत बुद्धिवंत कबिराय।

१-शीतलसिख दाहक भइ कैसे। चकइहिं शरद चाँदनी जैसे।

२--भलो कहत दुख रउरेहु लागा।

३· दो० लोने मुख दीठि न लगै यों कहि दीन्हो ईठ।
दूनी ह्वै लागन लगी दिये दिठौना दीठ॥

४-कोप बस ह्वै कै हिरनाकुस उदित प्रहलादै मारिबे को भयो आपु ही हनो गयो।

५-जारिबे को चाहत लंगूर जातुधान देखो बीर हनूमान जू जराय दई लंका को।

६-जीतिवे को आये भृगुनंद रघुनंदन को जीते गये आपु भये रीते बीरताई सों।

(४५)-सम

(विषमालंकार का ठीक विरोधी)

इसके भी तीन भेद हैं, यथा :—

(पहला)

बरनत जहाँ विशुद्ध मति यथायोग्य को संग।
प्रथम समालंकार तेहि भाषत बुद्धि उतंग॥

* सूचना--कई एक कवियों ने 'विषम' अलंकार के ६ भेद लिखे हैं। परन्तु बिचार करने से जान पड़ता है कि आगे के तीन भेद इसी तीसरे भेद के अन्तर्गत आजाते हैं।

१-सो०-जेइ विधि रच्यो गोपाल, तेइ ठकुराइन राधिका।
लखि चख होत निहाल, समसरि जुगुल किसोर की॥

२-दो०-चिरजीवो जोरी जुरै क्यौं न सनेह गंभीर।
को घटि ये वृषभानुजा वे हलधर के बीर॥

३-जेइ बिरंचि रचि सीय सँवारी। तेइ स्यामल वर रच्यौ बिचारी।

४-देखे हैं अनेक ब्याह सुने हैं पुरान वेद बूझे हैं सुजान साधु नरनारी पारखी। ऐसे सम समधी समाज न बिराजमान राम से न बर दुलही न सीय सारखी।

५-जस दूलह तस बनी बराता। कौतुक विविध होहिं मग्गुजाता॥

६-कुबजा को कूवर मधुप अहै, त्रिभंगिहि जोग।

(विनयपत्रिका से)

७-देव! तू दयाल, दीन हौं तू दानि, हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी तू पाप पुंजहारी॥ १॥
नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसो।
मो समान आरत, नहिं आरतिहर तोसो॥ २॥
ब्रह्म तू, हौं जीव हौं, तू ठाकुर, हौं चेरो।
... ... ॥ ३॥
तोहि मोहि नाते अनेक मानिये जो भावै।
ज्यौंत्यौं तुलसी कृपालु चरणशरण पावै॥ ४॥

८-दो०-मो सम दीन, न दीनहितु तुम समान रघुबीर॥
अस बिचारि रघुबंशमणि हरहु विषम भवभीर॥

[दूसरा]

दो०--कारण के सम बरणिये कारज को जेहि ठौर ।
देखि स रेस गुण रूप तहँ बरणत हैं 'सम' और ॥

(यथा)

१-सिय जु दुसह दुख सहि लियो सुता भूमि की होय ।
२-सो०ः--जगजीवन को दंद, उदय होत ही तम हरै ।
छीर सिन्धु को नंद, क्यौं न उजेरो होय शशि ।
३-दो०-मधुप बालपन ही पियो दूध पूतना केर ।
ताही ते दासी रुची यामें कछू न फेर ।

(तीसरा)

दो०-ताकी सिद्धि अनिष्ट विनु उद्यम जाके अर्थ ।
ताको सम तीजो कहैं जिनकी बुद्धि समर्थ ॥ यथाः-
१-दुंदुभि अस्थि ताल दिखराये । बिनु प्रयास रघुबीर ढहाये ।
सुग्रीव ने राम की परीक्षा लेनी चाही । रामने तुरन्त परीक्षा दी और परीक्षा में उत्तीर्ण हुए ।
२-हरि ढूँढ़न ब्रज में गई, पाये गिरधर लाल ।
३-छुवतहिं टूट पिनाक पुराना ।
४-छुवत टूट रघुपतिहि न दोषू
५-अति उतंग गिरि पादप लीलहिं लेहिं उठाय ।
आनि देहिं नल नीलहिं रचहिं ते सेतु बनाय ।
६-शैल विशाल आनि कपि देहीं । कंदुक इव नलनील सो लेहीं ।
७-तुरत वैद्य तब कीन्ह उपाई । उठि बैठे लछिमन हरषाई ॥

(४६)–विचित्र

दो०-जहां करत उद्यम कछू फल चाहत विपरीत।
बरनत तहां विचित्र कहि जे कविता के मीत ॥

(यथा)

१-जीवन हित प्रानहिं तजत नवत उँचाई हेत।
सुख कारण दुख संग्रहैं बहुधा पुरुष सचेत ॥
२-क्यौं नहि गंगा को सुमिरि दरस परस सुख लेत।
जाके तट में मरत नर अमर होन के हेत ॥
३-करिबे को उज्वल सुधा सो अभिराम देखो मन व्रजवाम रंगती है श्यामरंग में।
४-भवसागर के तरिबे के लिये बहु डूबत तीरथनीर मँझारे।
५-ईक सौ इक निज पूरबज तृप्त करन के हेत।
अनछाने जव-चून को पिंड गया में देत।
६—अमर होन हित समर महँ जूझत पुरुष पुनीत।

(४७)–अधिक

इस अलंकार में आधार और आधेय का उत्कर्ष कहा जाता है। इसके दो भेद हैं।

(प्रथम)

जहां बड़े आधार ते अधिक होय आधेय।
अर्थात् बड़े आधार से भी आधेय को बड़ा कहना-जैसे:-
दो०-जामे भारी भुवन सब गँवई से दरसात ॥
तेहि अखंड ब्रह्मंड में तेरो जस न अमात ॥

सवैया-सातौ समुद्र धरी बसुधायहसातो गिरीशधरे सब ओरे।
सातहीदीप सबै दरम्यान में होहिंगे खंड किते तेहिठौरे।
'दास'चतुर्दश लोक प्रकाशित हैं ब्रहमांड इकीसहि जोरे।
एतेही में भजि जैहै कहाँ खल श्रीरघुनाथ सों वैर विथोरे।

इसमें व्यंग से यह बात निकलती है कि श्रीराम जी का अमल दखल इससे भी अधिक स्थानों में है,-अर्थात् इतने आधार से बहुत बड़ा है।

(दूसरा)

जहँ अति लघु आधार महँ धरै बड़ो आधेय।

अर्थात् बड़े आधेय को छोटे आधार में रखना-जैसेः—

१ जा यदुपति के उदर में सिगरो बसत जहान।
सुख सों राखति ताहि तू हियरे हार समान।

२-विश्वामित्र मुनीश की महिमा अपरंपार,।
करतलगत आमलकसम जिनको सब संसार॥

३-ब्रहमांड निकाया निर्मित मायारोमरोम प्रति बेद कहै।
ममउदर सोबासीयहउपहासीसुनतधीरमतिथिरनरहै

४-व्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुण बिगत बिनोद।
सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या की गोद।

५-तुम जो गिरिवर कर धर्‌यौ सो है हलकी बात।
गिरि समेत मैं उर धर्‌यो नेकौ ना गरुआत॥

(४८)-अल्प

दो०-अति छोटे आधेय ते अति छोटो आधार।
ताहि अल्प भूषण कहैं जे सुबुद्धि आगार॥

अर्थात् अत्यंत सूक्ष्म आधेय की अपेक्षा आधार का अति सूक्ष्म वर्णन करना इस अलंकार का मुख्य उद्देश्य है। यथाः-

बरवा-अब जीवन की हे कपि आस न मोहिं।
कनगुरिया की मुँदरी ककना होहि॥

जानकी जी हनुमान जी से कहती हैं कि छिगुनी का छल्ला (अति छोटा छल्ला) हाथ में कंकण की तरह होता है (अर्थात् इतनी दुबली हो गई हूं)

यहाँ छल्ला आधेय और कर आधार है। अति छोटे आधेय से आधार को और भी सूक्ष्म कहा गया है।

पुनः—रोम रोम प्रति राजहीं कोटि कोटि ब्रह्मांड।

(मुरारिदान की सम्मति)

"रम्य हाय जेहि ठाँ अलपाई। अल्प अलंकृत सो सुखदाई"

इस परिभाषा से आधार और आधेय का झगड़ा मिट जाता है। हमारी भी यही सम्मति है कि इस अलंकार के लिये आधार और आधेय का झगड़ा न लगाना चाहिये। मनोरंजक अलपता के वर्णन में इसे स्वच्छन्द बिचरने देना चाहिये।

बोले हनुमान याहि मुँदरी न कहे मातु तेरे पाछे यासों राम कंकण कहत हैं।

पुनः—भुजा भई अति दूबरी कंकण कीन्ही छाप।

(४६)—अन्योन्य

दो०—जो जासों जैसो करै सो तासों तस कीन।
अन्योन्यालंकार तेहि भाषैं सब मति पीन॥

१-मुनि रघुबीर परस्पर नवहीं। बचन अगोचर सुख अनुभवहीं॥

२-सर की शोभा हँस है, राजहँस की ताल।

३-वे उनको अपराध करैं नहिं, वे उनको न उदास करैं चित।
वे मित राखे रहैं उनकी 'रघुनाथ' वे राखे रहैं उनकी मित।
प्रेम पगे दोउ आपुस में यहि भांति बरोबर क्यों न बढ़ै हित।
वे सुख देत रहैं उनको नित वे सुख देत रहैं उनको नित॥

४-शब्द सु शोभा अर्थ की देन बढ़ाय निहार।
त्योंही शोभा शब्द की बढ़वत अर्थ मुरार॥

५—शशि सों निशा निशा सों शशि भल।

६—कवि सों सभा सभा सों कविवर।

७-रामचन्द्र बिनु सिय दुखी, सिय बिनु उत रघुराय।

८ मनमोहन तन घन घन सु रमणि राधिका मोर।
श्री राधा मुखचंद को गोकुलचंद चकोर॥

(५०)—विशेष

इस अलंकार के तीन भेद हैं:— यथा—

(पहला)

जहँ जाहिर आधार बिनु है आधेय सुरंज। यथा:-

१ शुभदाता, सूरो, सुकवि, सेत करै आचार।
बिना देह हू 'दास' ये जीवित हैं संसार॥

२ बंदनीय काहक नहीं, वे कबिन्द मतिमान।
स्वरग गये हू काव्यरस जिनको जगत जहान।

३-सैनप केते लपेट लँगूर सों दीन्हें उड़ाय फटे फहरात हैं।
सागर व्योम के बीच लटे उलटे दल ऊपर ते मँड़रात हैं॥

४-बिनु बारिद बिजुरी बिना बारि लसत युग मीन।
विधु ऊपर तम तोम यह निरखी रीति नवीन॥

५–मारके करैया अरि अमरपुरै गे तऊ अजौं मारु मारु सोर होत है समर में ।

(दूसरा)

थोरे ही आरंभ में लाभ अलभ्य बखान । यथा:–

१–पाइ चुके फल चार हू करत गंगजल पान ।

२–आज की या छबि देखि सखी अब देखिबे को न रहो कछु बाकी ।

३–कपि तव दरस सकल दुख बीते । मिले आजु मोंहि राम पिरीते ।

(तीसरा)

वस्तु एक जहँ युक्ति तें बहु थल बरनी जाय । जैसे:-

१–घर बाहर अध ऊरधौ सब ठां राम लखाय ।

२–सोवत जागत दिशि विदिशि देखि परैं घनश्याम ।
कंस हृदय आठहु पहर कृष्ण करैं बिश्राम ॥

३–सती दीख कौतुक मगजाता । आगे राम सहित सिय भ्राता ।
फिर चितवा पाछे प्रभु देखा । सहित बन्धु सिय सुन्दर भेषा ।
जहँ चितवै तहँ प्रभु आसीना । सेवहिं सिद्ध मुनीश प्रबीना ।

४–सीयराममय सब जग जानी । करौं प्रनाम जोरि जुग पानी ।

५–निजप्रभुमय देखहिं जगत का सों करैं बिरोध ।

६. गोपिन सँग निशि शरद की रमत रसिक रसरास ।
लहाछेह अति गतिन को सबन लखे निज पास ॥

७ जल में थल में गगन में जड़ चेतन में 'दास' ।
चर अचरन में एक है परमातमा प्रकास ॥

सूचना—यह अलंकार पर्याय अलंकार से मिलता जुलता है । भेद यह है कि इसमें एक वस्तु का 'एकही समय' में 'बहुथलों' में होना कहा जाता है और पर्याय में एकही वस्तु का बहुथलों में क्रमशः आश्रय लेना वर्णन किया जाता है ।

(५१)-व्याघात

व्याघात = धक्का । इसके दो भेद हैं ।

(प्रथम)

दो०—एकहि बस्तु जहां कहूँ करै सुकाज विरुद्ध ।
प्रथम तहां व्याघात कहि बरणैं कबि मतिशुद्ध ॥

(यथा)

१—जासों काटत जगत के बंधन दीनदयाल ।
ता चितवनि सों तियन के मन बांधे गोपाल ॥
२—जौन उतारत हो तन ताप सो जारत आजु सुधाधर सोई ।
३—तू सबको प्रतिपालनहार विचारे भतार न मारु हमारे ॥
४-बरसत जु शशि पियूष सो बिष बरसत मोंहि जोय ।
५—नाम प्रभाव जान शिव नीके । कालकूट फल दीन अमीके ॥

(दूसरा)

दो०—एकै कारज साधनो करिकै क्रिया विरुद्ध ।
सो दूजो व्याघात है बरनत सुकबि सुबुद्ध ॥

(यथा)

१--लोभी धन संचै करै दारिद को डर मानि ।
'दास' यहै डर मानिकै दान देत है दानि ॥
२—रण ते डूबे को अमर भागत कायर कूर ।
यहै चाह चित करि नहीं बिचलत सांचे सूर ॥
३—दुख दारिद की संक सों लोभी स्वधन न देत ।
दातहु ताही संक सों सरबस देत सहेत ॥
४—मिलत एक दारुण दुख देहीं बिछुरत एक प्राण हरि लेहीं

(५२)–कारणमाला–(गुम्फ)

(प्रथम)

दो०–कारण ते कारज प्रगटि कारण ह्वै ह्वै जात।
तेहि कारणमाला कहैं जे कवि वर विख्यात॥

(यथा)

दो०–विद्या देती बिनय को बिनय पात्रता मित्त।
पात्रत्वै धन, धन धरम, धरमदेत सुख नित्त॥
सो०–होत लोभ ते मोह, मोहहि ते उपजै गरब।
गरब बढ़ावै कोह, कोह कलह, कलहहु व्यथा॥
दो०–होत पाप ते जड़ नृपति जड़ नृप ते अबिवेकु।
फौज दुखित अबिबेक तें ता दुख जीति न नेकु॥
दो०–बिनु सतसँग न हरि कथा, तेहि बिनु मोह न भागु।
मोह गये बिनु राम पद होय न दृढ़ अनुरागु॥
दो०–सतसँग तें बैराग है तातें मन संतोष।
संतोषहि तें ज्ञान है होत ज्ञान तें मोष॥

(दूसरी)

दो०–कारज को कारण जु सो कारज ह्वै ह्वै जाय।
कारण माला ताहु को कहैं सकल कविराय॥

(यथा)

दो० रामकृपा ते परमपद कहत पुराने लोय।
रामकृपा है भक्ति तें भक्ति भाग्य तें होय॥

अन्न मूल घन, घनन को मूल यज्ञ अभिराम।
ताको धन, धन को धरम, धर्ममूल हरिनाम॥

पुनः—दुख पाप तें, पाप सु दारिद तें, पुनि दारिद तुच्छ किये मन के।

(५३)–एकावली–(शृङ्खला)

दोहा--किये जँजीरा जोर पद एकावली प्रमान।

बिवरण–जहां पदों का ग्रहण और त्याग, पुनः ग्रहण और त्याग के ढँग से सब पद जंजीर की कड़ियों की तरह परस्पर जुड़े हों वहां एकावली समझना चाहिये। कारणमाला में कारण और कार्य का शृङ्खलाबद्ध सम्बन्ध जैसा दिखलाया गया है वैसा ही इसमें भी होता है, भेद केवल इतना है कि कारण माला में केवल कारण और कार्य की शृंखला बनाई जाती है, और इसमें सबही वस्तुओं की। 'कारणमाला' को एकावली कह सकते हैं, पर 'एकावली' को सदा कारणमाला नहीं कह सकते। यथाः—

१–गिरि पै वृष, वृष पै जु शिव, शिव पै सुरसरिनीर।

२–सो नहिं सर जित सरसिज नाहीं। सरसिज नहिं जेहि अलि न लोभाहीं। अलि नहिं जो कल गुंजन हीना। गुंजन नहिं जु मन न हरि लीना।

३–सवैया–सोभति सो न सभा जहँ वृद्ध न, वृद्ध न ते जु पढ़े कछु नाहीं। ते न पढ़े जिन साधु न साधित दीह दया न दिपै जिन माहीं। सो न दया जु न धर्म धरै धर धर्म न सो जहँ दान वृथा हीं। दान न सो जहँ सांच न 'केशव' सांच न सो जु बसै छल छाहीं।

४-(कवित्त)

कूरम पै कोल कोलहू पै शेष कुंडली है कुण्डली प फबी फैल सुफन हजार की। कहै 'पदमाकर' त्यौं फन पै फबी है भूमि, भूमि पै फबी है थिति रजत पहार की। रजत पहार पर शंभु सुरनायक हैं शंभु पर जोति जटाजूट है अपार की। शंभु जटाजूटन पै चन्द की छुटी है छटा चन्द्र की छटान पै छटा है गंगधार की।

(५४) सार

दो० अर्थन को उतकर्ष जहँ आगे आगे होत।

विवरण-जहां वर्णित वस्तुओं का उत्तरोत्तर उत्कर्ष वा अपकर्ष वर्णन किया जाय उसे 'सार' कहते हैं। इसका दूसरा नाम 'उदार' भी है। जैसेः—

(उत्कर्ष)

१-सब मम प्रिय सब मम उपजाये। सबते अधिक मनुज मोहि भाये
तिनमहँ द्विज द्विजमहँ श्रुति धारी। तिनमहँ निगमनीति अनुसारी॥
तिनमहँ पुनि विरक्त पुनि ज्ञानी। ज्ञानिहुते अति प्रिय विज्ञानी।
तिनतें मोहि अति प्रिय निज दासा। जेहि गति मोरि न दूसरि आसा॥

दो०—मखमल ते कोमल महा कदलि गरभ को पात।
ताहू ते कोमल अधिक राम तुम्हारे गात।

३-उन्नत अति गिरि गिरिन तें हरिपद हैं विख्यात।
तिन हूं ते ऊंचो घनो संत हृदय दरसात॥

४—हे करतार बिनै सुनो, 'दास' की लोकनि को अवतार कस्यो जनि। लोकनि को अवतार कस्यो तो मनुष्यन को तो सँवार कस्यो जनि। मानुष हू को सँवार कस्यो तो तिन्हैं

बिच प्रेम पसारि कर्‌यो जनि। प्रेम पसार कर्‌यो तो दयानिधि केहूं वियोग विचार कर्‌यो जनि॥

(अपकर्ष)

१—अधमते अधम अधम अतिनारी। तिन महँ मैं मतिमंद गँवारी॥

२-दो०-शिला कठोरी काठ तें तातें लोह कठोर।
ताहू तें कीन्हों कठिन मन तुम नंदकिसोर॥

३—तृण ते लघु है तूल, तूलहु ते लघु मांगनो।

सू०—इस अलंकार को अँग्रेजी में 'क्लाईमेक्स' (Climax) कहेंगे।

(५५)—क्रम

दो०-क्रम सों कहि पहले कछू क्रम ते अर्थ मिलाय।
यों ही ओर निबाहिये क्रम भूषण सु कहाय॥

विवरण—दो चार अथवा और भी अधिक चीजों का जिस क्रम से पहले वर्णन करें उसी क्रम से उनका वर्णन अंत तक निबाहें, उसे 'क्रम' अलंकार कहते हैं। 'यथासंख्य' भी इसी का नाम है। इस अलंकार के मुख्य ३ भेद हैं :—

(१) यथाक्रम (२) भंगक्रम (३) विपरीत क्रम।

(१)-यथाक्रम

दो०-रंक, लोह, तरु कीट ये परसि न पलटैं अंग।
कहा नृपति, पारस कहा, कह चंदन कह भृंग॥

यहां पहले चार वस्तुओं का उल्लेख किया—रंक, लोह, तरु और कीट। फिर कहा कि ये चारो सत्संग पाकर अपना रूप न पलट दें तो राजा, पारस, चंदन और भृङ्ग व्यर्थ ही हैं। यहां जिस क्रम से पूर्वार्द्ध में चार वस्तुओं के नाम आये हैं उत्तरार्द्ध में ठीक उसी क्रम से, उनको पलटाने वाली वस्तुओं के नाम

भी आये हैं अर्थात् रंक के लिये नृपति लोह के लिये पारस तरु के लिये चन्दन और कीट के लिये भृङ्ग। ऐसी ही वर्णन प्रणाली में 'क्रम' अलंकार माना जाता है। पुनः—

दो० गिरे अरिन के तकत तुव रूप रोष विकरार।
तन तों, मन तों, करनतों, स्वेद गरब, हथियार॥

अर्थात् तेरा रोष पूर्ण रूप देखकर शत्रुओं के तन से, मनसे और हाथों से गिर पड़े पसीना, गर्व और हथियार-अर्थात् तन से पसीना, मन से गर्व और हाथों से हथियार। यहां भी यथा क्रम वर्णन है। इसी प्रकार और भी समझ लेना। यथा:—

बन्दौं राम नाम रघुवर को। हेतु कृशानु भानु हिमकर को॥

'राम' शब्द के तीन अक्षर र, अ, म क्रम से अग्नि, सूर्य और चन्द्रमा के हेतु कहे गये।

पुनः-शत्रुन को मित्रन को परम पवित्रन को घालियत, पालियत, पूजियत पाये ते।

दो०-अमी हलाहल मद भरे सेत श्याम रतनार।
जियत मरत झुकि झुकि परत जेहि चितवत इकबार
भौं चितवति डोरे बरुनि असि कटार फँद तीर।
कटत फटत बंधत बिधँत जिय हिय मन तन बीर॥

पुनः-

छं०-जनि जलपना करि सुजस नासहि नीति सुनहि करहि छमा
संसार महँ पूरुष त्रिविधि पाटल, रसाल, पनस समा।
इक सुमनप्रद, इक सुमनफल, इक फलहि केवल लागहीं।
इक कहहिं, कहहिं करहिं अपर इक करहिं, कहत न बागहीं।

सूचना-इस अलंकार को फारसी, उर्दू तथा अरबी साहित्य में 'लफोनशर मुरत्तब' कहते हैं। इस अलंकार का एक अति उत्तम उदाहरण 'फिरदौसी' ने अपने 'शाहनामा' में लिखा है। फारसीदां पाठकों के लिये उसे हम यहां लिखे

देते हैं और हिन्दी वालों के समझने के लिये इसका भावानुवाद भी किये देते हैं। रुस्तम की तारीफ में फिरदोसी लिखता है :—

बरोज़े नवर्द आं यले अर्जुमंद। बशमशीरो,खंजर,बगुर्जो,कमंद।
बुरीदो,दरीदो,शिकस्तो,बिबस्त। यलांरासरो,सीनओ,पायो दस्त।

(भावानुवाद)

संगर में जब रुस्तम ने अपने विजयी हथियार उठाये।
खड्ग, कटार, गदा, अरु पाश के अद्भुत, यौं करतव्य दिखाये।
काटि गिरावत, फारत, तोरत बांधत चारि खनौ न लगाये।
शत्रुन के सिर और उरस्थल, पाद, भुजा नहिं जायँ गनाये।

इस में यथाक्रम वर्णन किया है—चक्र देखो।

खड्ग	कटार	गदा	पाश
काटि गिरावत	फारत	तोरत	बांधत
सिर	उरस्थल	पाद	भुजा

२-(भंगक्रम)

जिसमें कथित वस्तुओं का क्रम भंग हो जाय—

(यथा)

दो०-सचिव वैद्य गुरु तीन जो प्रिय बोलहिं भय आस।
राज्य धर्म तन तीन कर होइ वेगि ही नास॥

यहाँ सचिव, वैद्य और गुरु के क्रम से राज्य, तनु और धर्म कहना चाहिये था, सो क्रम भंग है।

इसको फारसी तथा उर्दू में "लफ़्फ़ोनशर ग़ैर मुरत्तब" कहते हैं। 'यथाक्रम' का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण जो हमें मिला है वह यह है।

(छप्पय)

आनन वेनी नैन वैन पुनि दशन सुकटि गति। शशि सर्पिन मृग पिक अनार केहरि करणिन पति। पुरन खिझित जक तरुण पक बरपंच पुष्टवल। शरद पताल विछोह बाग तरु गिरि बनकज्जल। निशि सन्निवेश शावक चुवत विगस प्रसूती मद-झरत। पृथिराज भनत वंशी बजत अस बनिता वनबन फिरत।

इस में प्रथम चरण में ७ वस्तुओं के नाम लिये, पुनः दूसरे चरण में यथा क्रम उनके उपमान कहे। पुनःतीसरे चौथे और पाँचवें चरण में यथाक्रम उन्हीं उपमानों के विशेषण कहते चले गये।

इस अलंकार का इससे बढ़कर हमें कोई उदाहरण नहीं मिला।

३-(विपरीत क्रम)

जिसमें पूर्वोक्त वस्तुओं के वर्णन का क्रम उलट दिया गया हो। जैसेः—

राज्य नीतिबिनु धन बिनुधर्मा। हरिहिं समर्पे बिनु सतकर्मा
विद्या बिनु विवेक उपजाये। श्रमफल पढ़े, किये अरु पाये।

यहां चार वस्तुएं कही गई-राज्य, धन, सत्कर्म और विद्या। फिर कहा गया है कि इन चारों के साथ अगर ये चार गुण न हों तो विद्या का पढ़ना, सत्कर्म का करना और धन तथा राज्य का पाना केवल श्रम मात्र है। यहां स्पष्ट देख पड़ता है कि जो क्रम बर्ण्य वस्तुओं का है ठीक उसके विपरीत उनके वर्णन का है।

(५६)–पर्याय

(प्रथम)

दो०–एक बस्तु क्रम सों जहां आश्रय लेय अनेक।
ताहि प्रथम परयाय कबि बरनैं सहित विवेक।

विवरण—एक वस्तु का क्रमशः बहुत स्थानों में आश्रय लेना वर्णन किया जाय वहाँ प्रथम पर्याय जानो ॥ जैसे:—

मणि माणिक मुकता छवि जैसी। अहि गिरि गज सिर सोह न तैसी।
नृप किरीट तरुणी तनु पाई। लहैं सकल सोभा अधिकाई।

इसमें माणिकादि का पहला स्थान अहि गिरि गजसिर वर्णन किया, फिर नृपकिरीट और तरुणी तन कहा गया।

दो०—अँसुवन ते वह नद कियो नद ते कियो समुद्र।
अब सिगरो जग जलमई करन चहति बनि रुद्र ॥

यहाँ आँसुओं का आश्रय पहले नद, पुनः समुद्र पुनः सारा जग कहा गया है।

दो०—हालाहल तोहि नित नये, किन बतराये ऐन।
अंबुधि हिय पुनि शंभुगर, अब निवसत खलबैन ॥
जीति रही औरङ्ग मैं, सबै छत्रपति छाँड़ि।
तजि ताहू को अब रही, शिव सरजा कर मांड़ि ॥

सूचना—स्मरण रखना चाहिये कि पर्याय अलंकार में एक आश्रय के त्याग के अनन्तर दूसरे आश्रय को ग्रहण करना कहा जाता है। जहाँ ऐसा न हो, वरन् प्रथम आश्रय में रहते हुए ही उस वस्तु का अन्य आश्रयों में भी जाना वर्णन किया जाय, वहां कई एक कवियों ने 'विकास' नामक एक पृथक् ही अलंकार माना है। जैसे:—

दो० सर सरिता गिरि सिंधु सों रुकत नहीं दिन रात।
जस तेरो जसवंत नृप जग में पसरत जात ॥
तुव अधरहिं में हे सखी हुतो जो पूरब राग।
अब तुव हिय में भी वहै लख्यौ परत बड़भाग ॥

सूचना—विकास के विपरीत भाव में कोई कोई कवि 'संकोच' अलंकार भी कहते हैं:—

(यथा)

तेजत रनि जसवंत तुव होत जगत विख्यात।
कुवलय इव अरि कुवलय जु सनै सनै सकुचात॥

इस दोहा में पूर्वार्द्ध में 'विकास' अलंकार और उत्तरार्द्ध में 'संकोच' है।

(पुनः विकास)

गोपिन के अँसुवान के नीर पनारे भये फिरि ह्वै गये नारे।
नारे भये नदियाँ बढ़ि के नदियां नद ह्वै गईं काटि करारे।
बेगि चलो तो चलो ब्रज मैं कवि 'तोष' कहैं ब्रजराज हमारे।
वे नद चाहत सिंधु भये पुनि सिंधुते ह्वै हैं जलाहल सारे।

(दूसरा पर्याय)

दो०-क्रम ही तें जहँ एक में आवैं वस्तु अनेक।
सो दूजो पर्याय है बरनत कबि सबिवेक। यथा-
'जा हिय में अविवेक हो छायो तहाँ विवेक'।

यहां एक ही हृदय में पहले अबिवेक का रहना पुनः विवेक का आना कहा गया।

दो०-ऋषिहि देखि हरषै हियो राम देखि कुम्हिलाय।
धनुष देखि डरपै महा चिन्ता चित्त डोलाय॥
"जनक लह्यौ सुख सोच विहाई"

यहां जनक के हृदय में पहले सोच था, पुनः सुख आया। आधार एक है, आश्रय लेनेवाले भिन्न २ हैं। पुनः

दो०-हुती देह में लरिकई, पुनि तरुणाई जोर।
बिरधाई आई अजहुँ, भजि ले नंदकिशोर॥

(५७)-परिवृत्त ❋

दो०-जहाँ अधिक अरु न्यून को लीबो दीबो होय।

❋ सूचना—इस अलंकार को 'विनिमय' भी कहते हैं।

विवरण–परिवृत्त का अर्थ है 'अदला बदला' वा लेना देना। इसके तीन भेद हो सकते हैं:–(१) बहुत देकर थोड़ा लेना। (२) थोड़ा देकर बहुत लेना। (३) सम देकर सम लेना जिसमें से तीसरे में हमारे मत से कोई अलंकारता नहीं आती इससे हम केवल प्रथम दो के ही उदाहरण लिखेंगे।

(१)–बहुत देकर थोड़ा लेना

दो० कासों कहिये आपनो यह अजान यदुराय।
मन मानिक दीन्हौं तुम्है लीन्ही बिरह बलाय॥

पुनः–तारा बिकल देखि रघुराया। दीन्ह ज्ञान हरि लीन्ही माया

पुनः–तन मन धन दै प्रेम सों लाये रोग बिसाहि।
तुम कौन धौं पाटी पढ़े हो लला मन लेत पै देत छटाँक नहीं।

(२२)–थोड़ा देकर बहुत लेना

१-चारो फल देत चार चाउर चढ़ाये ते।

२-सेवा सुमिरन पूजिवो पात आखत थोरे।
दिये सबै जहँ लौं जगत सुख गज रथ घोरे॥

३-इक धतूर फल दै शिवहिं लिय अमोघ फल चारि।

४-तीन मूठी भर आज देकर अनाज आपु लीन्ही यदुराय जू सों संपति धनेश की।

५-देखो त्रिपुरारी की उदारता अपार जहां पैये फल चारि एक फूल दै धतूरे को।

(५८)–परिसंख्या

दो०–करि निषेध थल एकतें राखिय औरहिं ठौर।
वस्तु, धर्म, गुण, जाति जहँ परिसंख्या तेहि ठौर॥

विवरण-जहां किसी वस्तु, धर्म, गुण वा जाति को अन्य सब स्थानों से (जो उसके उपयुक्त माने जाते हों) वर्जन करके किसी एक विशेष स्थान पर ठहरावें, वहां परिसंख्या अलंकार होता है। 'परिसंख्या' शब्द का अर्थ यहांपर "अपने स्थान से हटाई गई और दूसरे स्थान पर बैठाई हुई वस्तु की गणना" है।

यथा -

दो०-नृपति राम के राज्य में हैं न शूल दुखमूल।
लखियन चित्रन में लिखो शंकर के कर शूल॥

यहां राज्यभर में 'शूल' (कष्ट) का वर्जन करके केवल चित्र में शंकर के हाथ में (त्रिशूल) को स्थापित किया है। यही अलंकारता है।

पुनः—

दो०-दंड जतिन कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज।
जीतौ मनसिज सुनिय अस रामचन्द्र के राज॥

यहां यह कहा गया कि रामराज्य में दंड (सज़ा) कहीं नहीं है केवल नाममात्र को दंड (लाठी) संन्यासियों के हाथ में है। भेद (भेदनीति) कहीं नहीं है, केवल नृत्यक समाज में सुर, ताल, राग इत्यादि का भेद (बिलगाव) देखा जाता है, और कोई किसी को जीतने का उद्योग नहीं करता, केवल काम को जीतने की इच्छा करते हैं। इसीप्रकार और भी समझना, जैसे-

(कवित्त)

साम को तो काम मुनिवर के मुखन माहिं और ठौर में तो तासों रंचक न काज है। दाम ज़ल भरिवे के कामही में देखियत दंड को निवास एक कर यतिराज है। 'रतनेश' भेद एक सुर के मिलाइबे में देखो जहां होत गान नृत्य को समाज है। साम दाम दंड भेद अनत न देखे कहूं ऐसो सुखदाई रघुराज जू को राज है।

दो०—केशन ही में कुटिलता संचारिन में संक।
लखो राम के राज में इक शशि माहिं कलंक ॥

पुनः—(काव्य छन्द)

मूलन ही की जहां अधोगति केशव गाइय।
होम हुतासन धूम नगर एकै मलिनाइय।
दुर्गति दुर्गन ही जो कुटिल गति सरितन ही में।
श्रीफल को अभिलाष प्रकट कबिकुल के जी में।

(रामचंद्रिका)

पुनः—(कवित्त)

शत्रु को उथापि पीछे थापिबे में व्रत भंग दीखत युधिष्ठिर में गिद्धन में कंकता। कैद लोक कुल की त्यौं वेद मरजाद ही में, स्वैरगति मारुत में चातक में रंकता। इति ग्रंथ पूर्णता में संकर लिखैया लिखैं चोरी इतिहास में है होरी में निसंकता। चंद्रमा में काहू काल राहू ते ससंकता त्यौं द्वितीया में बंकता है पूनो में कलंकता ॥ १ ॥

आये जुर जांचिबे को जांचक जहां लौं रहे एहो कबि रघुनाथ आजु तीनों रथ में। एते मान दान तिन्हैं भूप दसरथ दीन्हें देत न दिखाई कहूं कोऊ सौज घर में। बसन के नाते पास बास कौशिला के एक भूषन के नाते नथ नाक छुला कर में। घोरे हाथी चित्रन के रहे चित्रसारी माहिं रामके जनम रहे दाम दफतर में ॥ २ ॥

दो०—पत्राहीं तिथि पाइये वा घर के चहुँ पास।
नित प्रति पूनो ही रहत आनन ओप उजास ॥

कबित्त—अति मतवारे जहां दुरदै निहारियत तुरगन ही में चंचलाई परकीति है। भूषन भनत जहां पर लगैं बानन में कोक पच्छिनहिं माहिं बिछुरन रीति हैं। गुनिगन चोर जहां एक

चित्त ही के, लोक बंधे जहां एक सरजा की गुन-प्रीति है।
कंप कदली में वारि बुंद बदली में शिवराज अदली के राज में
यों राजनीति है।

नोट–[कभी कभी प्रश्नोत्तर रीति से भी यह अलंकार कहा जाता है]

दोहा–सेव्य कहा? तट सुरसरी, कहा ध्येय? हरि पाद।
करन उचित कह? धर्म नित, चित तजि सकल विषाद।

(५६)--विकल्प

दो०–कै तो वह कै यह जहां यह बिकल्प दिखराय।
ताहि बिकल्प बखानहीं सिगरे कवि समुदाय॥

विवरण—'या तो ऐसा ही होगा या ऐसाही होगा' इस प्रकार के कथन में 'विकल्प' अलंकार माना जाता है। जैसेः—

१—जन्म कोटि लगि रगर हमारी। वरौं शंभु न तु रहौं कुमारी।

२–दो०–दिसि दिसि कूजहिं कोकिला फूले रुचिर रसाल।
दूरि करैगो विरह दुख कै गोपाल कै काल॥

३—कोमल श्रीरघुबीर महा नवनीतहु ते नव नूतन माई।
है शिव को धनु वज्र समान शशी रवि ताहि सकैं न उठाई।
तात को बोल अडोल सबै निरमूलक आनि बनी दुचिताई।
जानकी जान की आस तजी कि वरौं इनको कि मरौं विष खाई।

४—सीय स्यों राजकरौ युग लौं पथ ते भरतै मिलिहौं पलटाऊँ।
जूझि मरौं कि करौं प्रभुकारज तौ अपनो मुख आनि दिखाऊँ।

(जटायुवाक्य रावणप्रति)

५—हौं गरुड़ासन राम को सेवक रे छलिकै कोउ लेत सियाको।
कै तजु देह कि छांडु सनेह कि तू रण मांडु कि छाडु सियाको।

(६०)—समुच्चय

समुच्चय = समूह। यह अलंकार दो प्रकार का है।

(प्रथम)

दो०—बहुत भाव इकबारही तिनको गुंफन होय।
कबिकोविद सिगरे कहैं प्रथम समुच्चै सोय। यथा:—

चकित चितै सुंदरी पहिचानी। हरष विषाद हृदय अकुलानी।

यहां आश्चर्य, हर्ष, बिषाद और व्याकुलता सब भाव एकही साथ उदय हुए।

दो०—हे हरि तुम बिनु राधिका सेज परी अकुलाति।
तरफराति, चमकति, तचति, मुसकति, सूखी जाति॥

सवैया—मांगि पठाये सिवा कछु देश वजीर अजानन बोल गहे ना। दौरि लियो सरजा परनालो यों भूषन जो दिन दोय लगे ना। धाक सो खाक बिजैपुर भो मुख आयगो खान खवासके फेना। भै भरकी करकी धरकी दरकी दिल एदिलसाहकी सेना।

(द्वितीय)

दो०—एक काज के करन को हेतु जु होयँ अनेक।
ताहिं समुचय दूसरो बरनैं कवि सविवेक॥

बिबरण—किसी कार्य के होने के लिये एक हेतु (काफी तौर से) वर्तमान है ही, पर साथ ही साथ अन्य हेतु भी उपस्थित कहे जायें, यथा :—

दो०—गंगा गीता गायत्री गनपति गरुड़ गोपाल।
प्रातकाल जे नर भजैं ते न परैं भव जाल॥

यहां गंगा गीतादि उपर्युक्त कारणों में से एक कोई कारण भवजाल से छोड़ाने के लिये काफी है, पर बहुतों का वर्णन किया गया है।

दो०—गंगा गीता गुरु गऊ गोकुल औ गिरिराज।
ये देवतु कलिकाल में सदगति दिव्य दराज॥

पुनः—ग्रहग्रहीत पुनि बात बस तेहि पुनि बीछी मार।
ताहि पियाई बारुनी कहौ कौन उपचार।

पुनः—

दो०—एक मंद मैं मोह वश कीश हृदय अज्ञान।
पुनि प्रभु मोहिं विसारेऊ दीनबंधु भगवान॥

(६१)—समाधि

'समाधि' शब्द का अर्थ है 'शक्तिसंपन्न करना'।

दो०—और हेत के मिलन ते सुगम होय जहँ काज।

विवरण—आकस्मिक कारणान्तर के योग से जहां कार्य अति सुगमता से हो जाय।

१-पावक जरत देखि हनुमंता। भयो परम लघु रूप तुरन्ता।
निबुकि चढ्यो कपि कनक अटारी। भई सभीत निशाचर नारी।
हरि प्रेरित तेहि अवसर चले पवन उनचास।

हनुमान जी लंका को जलाना चाहते थे कि अकस्मात उनचासो पवनों की सहायता से वह काम और भी सुगम हो गया।

२-मीत गमन अवरोध हित सोचत कछू उपाय।
तबही आकसमात तें उठी घटा घहराय॥

३-रामचन्द सोचत रहे रावण बधन उपाय।
सुपनेखा ताही समय करी ठठोली आय॥

(६२)-प्रत्यनीक

दो०—शत्रु मित्र के पत्त सों किये बैर अरु हेत।
प्रत्यनीक भूषन कहैं सिगरे सुकवि सचेत॥

विवरण—जहां शत्रुपक्षवालों से बैर अथवा मित्रपक्षवालों से प्रेम करना कथन किया जाय। यह अलंकार 'अन्योन्य' अलंकार का संबंधी है। साक्षात् अपने साथ करने वाले के प्रति वैसा ही करना तो 'अन्योन्य' का विषय है, और उसके संबंधी के साथ वैसाही बरतना इस अलंकार का विषय है। 'प्रत्यनीक' शब्द का अर्थ है, 'सेनाप्रति' वा 'संबंधोप्रति'।

(शत्रुपक्षप्रति)

"विष्णु बदन सम बिधुहिं बिचारी। अबहु राहु दै पीड़ा भारी'

बिष्णु ने राहु का सिर काटा था। विष्णु के मुख के समान जानकर राहु चन्द्रमा को अब तक ग्रसता है।

दो०-तेज मंद रवि ने कियो बस न चल्यो तेहि संग।
दुहुन नाम एकै समुझि जारत दिया पतंग॥

सवैया-लाज धरौ शिव जू सों लरौं सब सैयद सेख पठान पठायकै।
भूषन ह्यां गढ़ कोटन हारे उहां तुम क्यौंमठ तोरे रिसायकै।
हिंदुन के पति सों न बिसाति संतावत हिंदू गरीबनपायकै।
लीजै कलंक न दिल्ली के बालम आलम आलमगीर कहायकै।

पुनः-पती कहै किन जाय कोऊ अब मोसों कछूक न चूक परी है।
बैर तिहारे हमारे हिये यह कोकिल कूकि कै हूक करी है।

पुनः-नहिं चितव जब कपि कोपि तब गहि दसन लातन मारहीं।
धरि केश नारि निकारि बाहर तेऽपि दीन पुकारहीं॥

(रावण जब यज्ञ से नहीं उठा तब बंदरों ने स्त्रियों को सताना आरम्भ किया)

पुनः--रावण दूत हमहिं सुनि काना। कपिन बांधि दीन्हें दुखनाना।

(मित्रपक्षप्रति)

दो०-छला छबीले लाल को नवल नेह लहि नारि।
लेति लगाय लगाय उर पहिरति धरति उतारि॥

२--हरि जन जानि प्रीति अति बाढ़ी। सजल नैन पुलकावलि ठाढ़ी।
३--छैल जू सैल तिहारी सुनै तेहि गैल की धूरि सों नैन घुरैंटति।
रावरे अंग को रंग बिचारि तमाल की डार भुजाभरि भेंटति।
४--चलत मोहिं चूड़ामणि दीन्ही। रघुपति हृदय लाय सोइ लीन्हीं।

(६३)—काव्यर्थापत्ति

काव्यर्थापत्ति = काव्य में न कहे हुए अर्थ का आ पड़ना।

दो० -'यहै भयो तो यह कहा' यहि बिधि जहां बखान।
कहत काव्य पद सहित तेहि अर्थापत्ति सुजान॥

१--"जितेउ सुरासर तब श्रम नाहीं। नर बानर केहि लेखे माहीं"॥
अर्थात् जब सुरासुर को जीत लिया तब नर वानरों को जीतना उसी के अन्तर्गत आ पड़ा।

२-सिंह पछार्‍यो बाहु बल कहा स्यार की बात।

३—जीत्यो जब चंदहिं अमंद मुख तेरो तब 'चिन्तामणि' मुकुर सरोज सनमानै को।
४—पूरो जिन पूरो पारावार है पहार डार इतनी सुनो हो ताको लंक लेन कितनी।
५ —पंकज पातकी बात कहा जिन कोमलता लई जीतिगुलाबकी।
६—भूषण भनत गढ़ कोट माल मुलुक दै सिवा सों सलाह राखिये तो बात भली है। जाहि देत दंड सब डरिकै अखंड सोई दिल्ली दलमली तो तिहारी कहा चली है।

(६४)—काव्यलिंग

काव्य = काव्य का अर्थ। लिंग = पहिचान करानेवाला चिह्न (कारण) इसलिये 'काव्यलिंग' शब्द का अर्थ है 'काव्य' में कही हुई बात की ठीक पहचान करानेवाला चिह्न (कारण)।

सूचना—पाठकों को खूब समझ लेना चाहिये कि हेतु (कारण) दो प्रकार का होता है-(१) उत्पादक (२) सूचक वा ज्ञापक। उत्पादकहेतु वह है है जिससे कार्य उत्पन्न हो जैसे अग्नि धूम का उत्पादक हेतु है और सूचक वा ज्ञापक हेतु वह है जो किसी बात की सूचना दे, जैसे धूम अग्नि का ज्ञापक हेतु है। बस इस अलंकार में 'ज्ञापक' हेतु द्वारा ही काम लिया जाता है। उत्पादक हेतु का कार्यकारण सम्बन्ध 'हेतु' अलङ्कार में वर्णन किया जायगा। इसलिये इस अलंकार की परिभाषा यों हुई कि :—

दो०—ज्ञापक कारण द्वार जहँ अर्थ समर्थन होय।
काव्यलिंग ताको कहत कबि कोविद सब कोय॥

दो०—कनक कनक तें सौगुनी मादकता अधिकाय।
वा खाये बौरात है या पाये बौराय॥

कबि कहता है कि धतूरा की अपेक्षा सोने में सौगुनी मादकता है। इस कथन के समर्थन में ज्ञापक हेतु देता है कि धतूरा खाने से मनुष्य बौराता है और सोना पाने ही से बौरा जाता है। बौरा जाना मादकता का ज्ञापक हेतु है।

धर्महीन प्रभुपदविमुख कालबिबश दससीश।
आये गुण तजि रावणहिं सुनहु कौशलाधीश॥

अंगद कहते हैं कि राजनीति के चार गुण (दाम, साम, दंड, भेद) रावण को छोड़कर आपके पास चले आये-कारण क्या? सो पूर्वार्द्ध में कथित है।

दो० मेरी भवबाधा हरो राधा नागरि सोय।
जा तन की झांई परे श्याम हरितदुति होय॥
तजि तीरथ हरि राधिका तनदुति करु अनुराग।
जेहि ब्रज केलि निकुंज मग पग पग होत प्रयाग॥

दो०–करौ कुबत जग कुटिलता, तजौं न दीनदयाल।
दुखी होहुगे सरल हिय बसत त्रिभंगी लाल॥

अपनी कुटिलता न छोड़ने की युक्ति कवि कैसी अच्छी कहता है। हे कृष्ण तुम त्रिभंगीलाल हो इसलिये सरल (सीधा) हृदय में रहने से तुम्हें कष्ट होगा। इसलिये मैं अपने हृदय को कुटिल (टेढ़ा) ही बनाये रक्खूंगा, चाहे जगत-जन मुझे बुरा (कुवत=कुवात) ही क्यों न कहैं।

सूचना–कोई कोई आचार्य इस 'काव्यलिङ्ग' अलंकार को 'हेतु' अलंकार का प्रकारांतर ही मानते हैं। परंतु हमारी सम्मति से इसमें हेतु अलंकार की अपेक्षा कुछ विलक्षण ही अलंकारता है।

एक महाशय इस अलंकार की यह परिभाषा लिखते हैं–

"काव्यलिंग जहँ युक्ति सों अर्थ समर्थन होय"।

एक दूसरे महाशय यों लिखते हैं:—

करै समर्थन युक्ति बल काव्यलिंग है सोय।
कहुँ सुभाव कहुँ हेतु कहि कहुँ प्रमान दै होय॥

तात्पर्य तीनों परिभाषाओं का यही है कि 'किसी कही हुई बात का समर्थन कुछ हेतु सूचक बात कहकर करे।

पुनः—

१–वृथा विरस बातैं करति लेति न हरि को नाम॥
यह न आचरज है कछू 'रसना' तेरो नाम॥

२–अब न मोहि डर बिघन को करत कौन हू काज।
गनगायक गौरी तनय भयो सहायक आज॥

३–श्याम गौर किमि कहौं बखानी। गिरा अनैन नैन बिनु बानी
(यहाँ न कह सकने का कारण बहुत ही अच्छा कहा गया है)

(६५)—अर्थान्तरन्यास

अर्थान्तरन्यास = दूसरे प्रकार का अर्थ रखना।

दो०—साधारण कहिये बचन कछु अवलोकि सुभाय।
ताको पुनि दृढ़ कीजिये प्रगट बिशेष बनाय॥
कै विशेष ही दृढ़ करै साधारण कहि 'दास'।
ताको नाम बखानहीं कहि अर्थान्तरन्यास॥

विवरण—पहले कोई बात कही जाय, फिर यदि वह बात साधारण हो तो विशेष उदाहरण से और यदि विशेष हो तो साधारण सिद्धान्त से उसका समर्थन किया जाय। इन दोनों प्रकार के कथनों में अर्थान्तरन्यास अलंकार माना जाता है।

(साधारण की दृढ़ता विशेष से)

दो०—कारण ते कारज कठिन होय दोष नहिं मोर।
कुलिश अस्थि तें उपल ते लोह कराल कठोर॥

इसमें दोहे के पूर्वार्द्ध में एक सामान्य बात कह कर उत्तरार्द्ध में विशेष प्रमाण द्वारा वही बात पुष्ट की गई है। पुनः—

१—दो०—बड़े न हूजै गुणन बिनु विरद बड़ाई पाय।
कनक धतूरे सों कहत गहनो गढ़ो न जाय॥

२ दो०—अति लघुहू सतसंग तें लहत उच्च पदवीसु।
कीट सु लहि सँग सुमन को चढ़त ईस के सीसु॥

३—दो०-जे छोड़त कुल आपनो ते पावत बहु खेद।
लखहु बंस तजि बांसुरी लहै लोह को छेद॥

४—दो०—लागत निज मन दोष ते सुन्दर हू विपरीत।
पित्त रोग बस लखहिं नर सेत शंख हू पीत॥

५-दो०-बरजत हूँ जाचक जुरै दानवंत की ठौर।
करी करन झारत रहैं तऊ भ्रमैं तहँ भौंर ॥

६-राम भजन बिनु मिटहिं न कामा।
थल विहीन तरु कबहुँ कि जामा ॥

७-छोटे, बड़े पद को पहुँचैं जब पावत हैं सतसंग बिलास को।
पान के साथ ह्वै जात लखो क्षितिनाथ के हाथ लौं पात पलास को ॥

(विशेष का समर्थन सामान्य से)

१-असकहि चला विभीषण जबहीं। आयुहीन भे निश्चर तबहीं।
साधुअवज्ञा तुरत भवानी। कर कल्यान अखिल कर हानी ॥

यहां पहले विशेष बात कही कि ज्यौं ही विभीषण लंका को त्याग कर रामजी की शरण को चला त्यौंही सब निश्चर आयुहीन हो गये, फिर साधारण सिद्धान्त से "साधुओं की अवज्ञा सर्वकल्याण को विनाश करती है" उसकी पुष्टि की गई। इसी प्रकार और भी जानो।

दो०-हरि प्रसाद गोकुल बच्यो, का नहिं करहिं महान।
इसमें हरि प्रताप गोकुल बच्यो = यह विशेष बात है।
का नहिं करहिं महान = सामन्य बात से समर्थन है ॥

३-धूरि चढ़ी नभ पौन प्रसंग ते कीच भई जल संगति पाई।
फूल मिलै नृपपै पहुंचै कृमि काटन संग अनेक व्यथाई ॥
चंदन संग कुदारु सुगंध ह्वै नीब प्रसंग लहै करुवाई।
दास जू देखो सही सब ठौरन संगति को गुण दोष सदाई ॥

इसमें प्रथम के तीन चरणों में विशेष बातें कहके चौथे चरण में साधारण सिद्धान्त द्वारा उन सब की पुष्टि का गई है। पुनः—

४-दो०-कैसे फूले देखियत प्रात कमल के गोत।
'दास' मित्र उद्दोत लखि सबै प्रफुल्लित होत ॥

५—परशुराम पितु आज्ञा राखी। मारी मातु लोक सब साखी ॥
तनय ययातिहि यौवन दयऊ। पितु आज्ञा अघ अयश न भयऊ ॥

दो०—अनुचित उचित बिचार तजि जे पालहिं पितुबैन।
ते भाजन सुख सुजस के बसहिं अमरपति ऐन ॥

सूचना—(काव्यलिङ्ग और अर्थान्तरन्यास का भेद)

काव्यलिङ्ग में कथित बात के समर्थन की जरूरत जान पड़ती है और बिना समर्थन किये पाठक को शंका बनी रहती है। यह समर्थन कारणवत होता है। अर्थान्तरन्यास में समर्थन कारणवत् नहीं वरन् उदाहरणवत् होता है और अगर समर्थन न भी किया जाय तो भी बात पूरी हो जाती है।

(६६)—विकस्वर

विकस्वर = विकसनशील।

दो०—कहि विशेष सामान्य पुनि कहिये बहुरि विशेष।
ताहि विकस्वर कहत हैं जिनके बुद्धि अशेष ॥

विवरण—पहले कोई विशेष बात कहा जाय। उसके समर्थन को साधारण बात कही जाय, पर इतने से भी सन्तुष्ट न होकर फिर किसी विशेष उदाहरण से उसका समर्थन किया जाय। यथाः—

१—दो०—बड़ीविपति पांडवन पै खोई हारि सुबाम।
दुख न गनत कछु सत पुरुष, ज्यौं हरिचँद, नल, राम॥

यहां बड़ी विपति ······ सुबाम = एक विशेष वर्णन है।
दुख न गनत कछु सत पुरुष = पुनः सामान्य से पुष्टि है॥
ज्यौं हरिचँद, नल, राम = पुनः विशेष से पुष्टि है।

२—बारिध बांधि सिलान सों राम जू लै कपि को दल रावन मारो। कारज ये समरत्थन के चहिये इनको न अकत्थ बिचारो॥
'गोकुल' देत कहे सो सुनो सति मानि हिये मति में निरधारो।
गोपन के हित हेत गोपाल लखो शिशुताइहिं में गिरि धारो ॥

यहां प्रथम चरण में एक विशेष बात कही गई है। दूसरे चरण में सामान्य से उसकी पुष्टि है और चौथे चरण में विशेष से पुनः उस सामान्य की पुष्टि की गई है।

सूचना—स्मरण रखना चाहिये कि इस अलंकार में अन्तिम पुष्टीकरण या तो उपमान वाक्य से होता है या अर्थान्तरन्यास से। पहले उदारहण में उपमान से पुष्टीकरण किया गया है और दूसरे में अर्थान्तरन्यास से। इसी तरह नीचे के उदाहरणों में भी समझ लो।

३—देती स्वकीय तु पी को सुखै निजु केती बगारत ह्व मति स्वैली। 'दास' जू ये गुण हैं जिनमें तिनही की रहै जग कीरति फैली॥ बात सही बिधि कीन्हो भलो तेहि योंही भलाइन सों निरमैली। काटि अँगारन में गहि गेरेहु देत सुबासना चंदन चैली॥

इसमें प्रथम चरण में विशेष, दूसरे में सामान्य, पुनः चौथे में विशेष है।

पुनः

४—रत्न अनंत जनक हिमपरवत। महिमा घटहि न जो शीतलअत डूबत एक दोषगुण गण में। शशि कलंक जैसे किरनन में।

इसमें प्रथम दो चरणों में एक विशेष बात कही गई है। तीसरे चरण में सामान्य से उसकी पुष्टि है। चौथे चरण में पुनः उपमान वाक्य से विशेष कहकर सामान्य की पुष्टि की गई है।

पुनः

५—इन्द्र को सांमा सुदामा को कृष्ण दई मिलतै न गयो पल-सेखो। मैं कहौं जो सो सुनो मन दै इतने को न आप अपूरब लेखो। रीति बड़ेन की ऐसई है रघुनाथ कहै उर में अवरेखो। अंक लगाय मिले रघुनायक लंक बिभीषण को दई देखो।

(६७)—प्रौढ़ोक्ति

दो०—हेतु न जो उत्कर्ष को कल्पित कीजै तौन।
प्रौढ़ोकति तासों कहत कबि कोबिद मति भौन॥

दो०—ईस सीस के चन्द्र सो अमल आठहू जाम।
सुरसरि तट के बरफ तें धवल सुजस तव राम॥

महादेव के शीश पर का चन्द्रमा और गंगा तट का बर्फ कुछ अधिक सफेद नहीं होते, तथापि कल्पना की गई है। इसी को प्रौढ़ोक्ति कहते हैं।

पुनः—तेरो जस सुरसरित के पुंडरीक सो सेत।

(कवित्त)

मानसर बासी हंस बंस न समान होत, चंदन सों घस्यो घनसारऊ घरीक है। नारद की सारद की हांसी में कहां की भास शरद की सुरसरि को न पुंडरीक है। भूषन भनत छक्यो छीरधि में थाह लेत फेन लपटानो ऐरावत को करी कहै। कयलास ईस ईससीस रजनीस वहीं अवनीस सिवा के न जस को सरीक है।

वि०—हंस मानसर बासी होने से कुछ अधिक सफेद नहीं हो जाते। इस प्रकार चंदन के संग से कपूर, नारद और सारद की होने से हंसी, शरद ऋतु की गंगा का होने से स्वेत कमल, कुछ अधिक स्वेत न होंगे, परन्तु कल्पना की गई है। इसी प्रकार और भी समझ लो।

पुनः

सवैया—पान किये हू दवानल को जेहि को अधरारस नाहिं ढढ़ै री। ता के लगी मुख सों यह जाय तो ज्वाल सी तानन क्यों न गढ़ै री। गोकुलनाथ के हाथ बसी है बिसासिनी नाथिबे ही को बढ़ै री। छेदति या हिय को बँसुरी सखि पाहन फोरि कै बाँस कढ़ै री।

यहां वंशी की उत्कर्षता के जो हेतु कहे गये हैं, वास्तव में वे उसकी उत्कर्षता के हेतु नहीं हैं, तो भी कल्पित किये गये हैं

(६८)—संभावना

दो०—'होय जु यों तो होय यों' जहँ कहुँ बर्णन होय ।
अलंकार संभावना ताहि कहैं सब कोय ॥ यथा —

१-दो०—उगै जो कातिक अंत की छनदा छोड़ि कलंक।
तो कहुँ तेरे बदन की समता लहै मयंक ॥

२—जो छबिसुधा पयोनिधि होई । परमरूपमय कच्छप सोई ।
सोभा रजु मंदर सिंगारू । मथै पाणि पंकज निज मारू ।
यहि बिधि उपजै लच्छि जब सुन्दरता सुखमूल ।
तदपि सकोच समेत कबि कहैं सीय समतूल ॥

३—जो तुम अवत्यो मुनि की नाईं । पदरज सिर सिसु धरत गोसाईं ॥

४—मीत न नीत गलीत ह्वै जो धन धरिये जोर ।
खाये खरचे जो बचै तो जोरिये करोर ॥

सूचना—'प्रमाण' अलंकार के अन्तर्गत एक भेद 'सम्भव' भी है । उसमें और इस संभावना अलंकार में यह भेद है कि इसमें तो निश्चय कहा जाता है कि 'यदि ऐसा होता तो ऐसा होता' और उस 'संभव' में केवल यह कहा जाता है कि "ऐसा होना संभवित है" । हो या न हो, यह निश्चित नहीं ।

(६९)—मिथ्याध्यवसित

(मिथ्या बात को निश्चित कर लेना कि यह ऐसा ही है)

दो०—जहँ मिथ्याको सत करै कहि मिथ्या कछु और ।
मिथ्याध्यवसित होत है अलंकार तेहि ठौर ॥

(यथा)

१ - जो आंजै नभ कुसुम रस लखै सो अहि के कान ।

२—गोकुल नाथ सुनौ बन में यह आजु बड़ो अचरजहि लेख्यो ।
एक ससा गहि दौरिकै सिंहहि फारत पेट पछारत पेख्यो ।

मीत कह्यौ यह सो सब साँच है ईश्वर की महिमा अवरेख्यो।
इंदुर एक दुरद्द को आज नदी तट में रह्यो लीलत देख्यो।
३-ससा सींग के धनुष लिय, गगन कुसुम धरि माल।
खेलत बंध्यासुतन संग तुव अरिगण छितिपाल।
४-तेरो कुजस सुनाइबे, बधिरन बसुधा बीर।
गावत गूंगो कछुक पी, दूध उदधि के तीर।
५-या भूपति के अयश निहारे। गने परारध ते अति भारे।
गावत हैं गूंगा गण खरे। जिनके बचन समझ नहिं परे।
६-मैं चढ़ि सौध अमंद, गहे मूठि भरि कै नखत।
मीत मह्यूं गहि चंद अंक लिये कब लौं रह्यौं।
७-शश सींगकी करि लेखनी, मसि कुरँग तृष्णा नीर।
आकाशपत्रहिं पर लिख्यो कर हीन कोउ कविबीर।
जनमांध पंगुर मूक बंध्या को जु सुत लै जाय।
जसवंत अपजस बधिर गन को है सुनावत गाय॥

(७०)-ललित

दो०-ललित अलंकृत जानिये कह्यौ चाहिये जौन।
ताही के प्रतिबिंब ही बरनन कीजै तौन।

विवरण-जो वृत्तान्त कहना है, उसे न कह कर केवल उसका प्रति बिम्बमात्र कहा जाता है। यथाः—

१-लिखत सुधाकर गा लिखि राहू। बिधिगति बाम सदा सबकाहू

यहां "रामजी का राज्याभिषेक था सो तो न हुआ उलटा बनवास हुआ" यह प्रस्तुत वृत्तान्त है, सो नहीं कहा, उसका प्रतिबिंब मात्र कहा गया।

२-सोचहिं दूषण दैवहिं देहीं। बिरचत हंस काक किय जेहीं।

३-यहि पापिनिहि बूझि का परेऊ। छाय भवन पर पावक धरेऊ
४-दो०-सुनिय सुधा देखिय गरल सब करतूति कराल।
जहँ तहँ काक उलूक बक, मानस सकृत मराल॥
'रामराज्य' का चर्चा केवल सुनने में आया, देखने में न आया, यह कहना था, सो न कह कर यों कहा।
५-मेरी सीख सुनति न सखि उलटे उठति रिसाय।
सोयो चाहति नींद भरि सेज अँगार बिछाय॥
६-तब न सीख मानी अली कियो विचार न कोय।
चाखो चाहति अमृत फल विष को बीजा बोय।
७-हे रघुनाथ कहा कहिये कहते कछु बात नहीं बनि आवैं।
देखति ही इनकी मति को ऋतु पावस बीति गये घर छावैं।

(७१)—प्रहर्षण—(त्रिविधि)

(प्रहर्षण = मनचाहा आनन्द)

१-(प्रथम)

दो०-जतन बिना ही होत है जहँ चित चाही बात। जैसेः-
१-दो०-जाको रूप अनूप लखि सखि न गयो धरि धीर।
आपुहि ते गैया दुहन आयो वही अहीर॥
२-सातहु दीपन के अवनीपति हारि रहे जिय में जब जाने।
बीस बिसे व्रत भंग भयो सु कहो अब केशव को धनु ताने।
शोक की आग लगी परिपूरण आय गये घनश्याम बिहाने।
जानकी के जनकादिक के सब फूलि उठे तरु पुन्य पुराने।
३-नाथ सकल साधन मैं हीना। कीन्ही कृपा जानि जन दीना।
४-निश्चर हीन करौं महि भुज उठाय प्रन कीन।
सकल मुनिन के आश्रमन जाय जाय सुख दीन॥

(मुनि लोग ऐसा चाहते ही थे, वही बात बिना किसी आग्रह के रामजी ने कह दी और स्वयं ही उनके आश्रमों पर गये, उन्हें कोई विशेष उद्योग नहीं करना पड़ा)

५-खुलि गये सकल पटल के तारे। भये निद्रा बस सब रखवारे॥
अरु बसुदेव देवकी दोऊ। छूटि गये बंधन ते सोऊ॥

६-रामकृपा भवनिशा सिरानी जागे पुनि न डसैहों। (विनय)

(राम कृपा से ऐसी बात हुई, किसी उद्योग से नहीं)

सूचना-आपुहि ते, राम कृपा ते, अनायास ही, अचानक ही, इत्यादि या इसी अर्थ के अन्य वचन इस अलंकार के बाचक जान पड़ते हैं।

२-(द्वितीय)

दो०-जहँ चित चाही बात तें अधिक अरथसिधि होय।

१-दो०-चहत सात पावत सहस गज पावत हय चाहि।
भाउ सिंह दीवान है जगत सराहत जाहि॥

२-धरहु धीर ह्वै हैं सुत चारी। त्रिभुवन विदित भगत-भयहारी॥

(राजा दशरथ एक पुत्र मांगने गये थे, चार पाये)

३-इक फल चहि पूजत सिवहिं तुरत मिलैं फल चारि।

४-आपुन के कर में बसिबे को बजार में रावरे हाथ बिकाने।
भाग लखो मुकतान को ए जू हरा ह्वै रहैं हियरे लपटाने।

३-(तृतीय)

दो०-ढूँढत जाके जतन को बस्तु चढ़ै कर आन

(यथा)

१ दो० हरि की सुधि को राधिका चली अली के भौन।
हँसत बीचही मिलि गये बरनि सकै सुख कौन॥

२-निधि अंजन की औषधी ढूँढ़त लह्यो निधान।

(भूमि में गड़े हुए धनको देखने के लिये एक अंजन बनता है। उसे "निधि-अंजन" कहते हैं। उस निधि अंजन की औषधी को ढूँढ़ते हुए भूमि में गड़ा हुआ धन ही मिल गया)

(७२)-विषादन

दो०-जहँ चित्त चाही वस्तु तें पावै वस्तु विरुद्ध।
बुद्धिवंत नर बरनहीं तहां बिषादन शुद्ध॥

दो०-उड़िहौं खिलिहै कमल जब निशि बीते परभात।
यों सोचत अलि कोश गत तोरयो करि जलजात॥

(किसी कमलकोश में बन्द हुआ भौंरा सोच रहा था कि कल्ह सवेरे इस वंदीखाने से निकलूंगा कि इतने में किसी हाथी ने आकर वह कमल तोड़ मरोड़ डाला)

२-एक विधातहिं दूषण देहीं। सुधा दिखाय दीन विष जेहीं।
३-लिखत सुधाकर गा लिखि राहू। विधिगति बाम सदा सबकाहू
४-जेतो औगुन ढूँढिये गुनै हाथ परिजाय।

सूचना-इन उपरोक्त चौपाइयों में वाक्यार्थ से 'लसित' अलंकार है, परन्तु व्यंग्यार्थ से 'विषादन' भी है-रामराज्याभिषेक चितचाही बात न हुई, वरन् उसके विरुद्ध उन्हें वनबास दिया गया-यह इच्छा से विरुद्ध हुआ। अतः विषादन है।

पुनः

४-कन देबो सौंप्यो ससुर बहू थुरहथी जानि।
रूप रहँचटे लगि लग्यो मांगन सब जन आनि।

(७३)-(उल्लास)

दो०-औरहि के गुण दोष तें औरहि को गुण दोष।
होत, तहां उल्लास कहि बरनत मति के कोष॥

विवरण–उल्लास शब्द का अर्थ है "प्रबल संबंध"। जहां संसर्ग संबंध से संगति का गुण दोष अन्य में वर्णन किया जाय वहां यह अलंकार होता है। इसके चार भेद हैं। यथाः—

१-(पहला)

दो० और वस्तु के गुणन तें और होत गुणवान।

(यथा)

१–सठ सुधरहिं सतसंगति पाई। पारस परसि कुधातु सोहाई।
२–सज्जन सकृत सिंधु सम कोई। देखि पूर बिधु बाढ़हिं जोई।
३–कह्यो देवसरि प्रगट ह्वै 'दास' जोरि युग हाथ।
भयो सोय तुव न्हान ते मेरो पावन पाथ॥
४–कुटिल कुराही कूर कलही कलंकी कलिकाल की कथन में रहे जे मति खोइ कै। तेऊ विष्णु अंगन में बैठे सुरसंगन में गंग की तरंगन में अंगन को धाइ कै।
५–दो०–नृप सभान में आपनी होन बड़ाई काज।
साहि तनय शिवराज के करत कवित कबिराज॥
६–मज्जन फल देखिय ततकाला। काकहोहि पिक बकहु मराला॥

२–(दूसरा)

दो०–लगै और के दोष तें दोष जु औरहिं आय।

(दोहा)

१ संगति को गुण सांच है कहैं जु गुनी रसाल।
कुटिल कूबरी संग ते भये त्रिभंगी लाल॥
२–दुखित होंहिं पर विपत विशेषी।
३ रहिबो उचित न मलय तरु, यहिं कुबंश बन माहिं।
घसत परस्पर ह्वै अगिन, औरहु तरु जरि जाहिं॥

४-शिव सरजा के बैर को, यह फल आलमगीर।
छूटे तेरे गढ़ सबै, कूटे गये वजीर॥
५-स्याम सुरति करि राधिका तकति तरणिजा तीर।
अँसुवन करति तरौंस को छिन खौरोहौं नीर॥
६-निरखु परस्पर घसन सों बांस अनल प्रगटाय।
जरत आपु सकुटुंब अरु बन हू देत रजाय॥
७-भूलि गयो अपनो दुख ता छिन बानर के दुख नैन बहाये

३-(तीसरा)

दो०-बरने ते गुण और में दोष और को होत।

१—"जरहिं सदा पर सम्पति देखी"।
२—चंद्र अलोक ते लोक सुखी यह कोक अभागो न शोक ते छूटै।
३-दो०—बरसे बारिद के लता तृण तरु सब हरियात।
भाग्य लखो या आक को जल हू सों जरि जात॥
४—आक जवास पात बिन भयऊ। जिमि सुराज्य खल उद्यम गयऊ॥

४-(चौथा)

दो०-अवगुण ते जहँ और के गुण औरहिं परकास।

(यथा)

१—खल परिहास होय हित मोरा।
२—परहित हानि लाभ जिन केरे।
३—सुखी होहिं पर विपति विशेषी।
४—डावरे की बुद्धि ह्वै कै बावरे न कीजै वैर. रावरे के वैर होत काज शिवराज के।

सूचना—स्मरण रखना चाहिये कि यह 'उल्लास' अलंकार 'असंगति' अलंकार के प्रथम भेद से कुछ मिलता जुलता है। दोनों में भेद यह है

कि उसमें कार्य कारण का संबंध है और इस अलंकार में केवल स्वभाव की अपेक्षा है, कारण कार्य की नहीं।

(७४)—अवज्ञा

दो० औरै के गुण दोष ते औरै गुण नहिं दोष।
ताहि अवज्ञा कहत हैं सकल सुकवि मतिपोष॥

विवरण—यह अलंकार 'उल्लास' का उलटा है। इसके दो भेद हैं।

(प्रथम)

दो०-जहां एक के गुणन ते दूजो गुणहि गहै न।

(यथा)

१-दो० करि बेदान्त बिचार हू शठहिं बिराग न होय।
रंच न मृदु मैनाक भो निशि दिन जलनिधि सोय।

२—देखो अभाग कलानिधि को 'रघुनाथ' सदा शिव शीश पै जाग्यो
जैसे को तैसो कलंक रहो शिव संगति को गुण नेकु न लाग्यो।

३—विपुल बारि बरषत जलद तरु तृण सब हरियात।
इन पापीन करील में कबहुं न उलहत पात।

४—बड़वानल सह सिंधु जल उष्ण न होत निहार।

५—तुलसी प्रभु भूषण किये गुंजा बढ़ो न मोल।

(दूसरी)

दो०—जहां और के दोष ते दोष न औरै होय।

(यथा)

१—सब तरुवर नवदल लहैं रितु बसंत के माहिं।
पत्र न लगैं करील महँ दोष बसंतहि नाहिं॥

२—तिमिर तोम तुरतै मिटै प्रगटे जाहि कछूक ।
कहा दोष दिननाथ दिन देखै जो न उलूक ॥
३—मोती संग जु पोत के पहिरै बाला कोय ।
तो महिमा मुक्तान की घटै न नेकौ सोय ॥
४—कहा भयो जो तजत हैं मिलन मधुप दुख मानि ।
सुवरन बरन सुबास युत चंपक लहै न हानि ॥
५-दोष बसन्त का नेक नहीं उलहै न करील की डार जु पाती ।
६-दो०-कह बसंत को दोष जो पत्र न लहै करील ।
दूषण मेघहिं कौन जो चातक मुख नहिं नीर ॥
७-बरषि विश्व हरषित करत हरत ताप अघ प्यास ।
तुलसी दोष न जलद को जल ते जरै जवास ॥
८-तुलसी देवल देव को लागे लाख करोर ।
काक अभागे हगि भरो महिमा भई कि थोर ॥

(७५)—अनुज्ञा

(अनुज्ञा = जो अंगीकार करने योग्य न हो उसे अंगीकार करना)

(दोहा)

इच्छा करिये दोष की दोषहिं में गुण देखि ।
ताहि अनुज्ञा कहत हैं सुकबिन मत अवरेखि ॥
१-मुनि शाप जो दीन्हा अति भल कीन्हा परम अनुग्रह मैं माना ।
देख्यौं भरि लोचन हरि भवमोचन यहै लाभ शंकर जाना ॥
२-रामहि चितव सुरेश सुजाना । गौतम शाप परम हित माना ।
३-तप करि करि कमलापति सों मांगत यों लोग सब करि मनोरथ ऐसे साज के । बैपारी जहाज के न राजा भारी राज के भिखारी हमैं कीजै महाराज शिवराज के ॥

४-चेरिये पै जो गोपाल रचैं तो चलोरी सबै मिलि चेरी कहावैं।
कूबर ही पै लगै मन जो सब कम्मर दोरि कै हांडी वँधावैं॥
५-होउ बिपत्ति जामैं सदा हिये चढ़त हरि आनि।

(७६)-तिरस्कार

दो०-त्यागिय आदरणीय हू लखिय जो दोष विशेष।
तिरस्कार भूषण कहैं जिनकी सुमति अशेष॥

(यथा)

१-दो०-जरौ सुसम्पति सदन सुख सुहृद मातु पितु भाय
सनमुख होत जो रामपद करै न सहज सहाय॥
२-जाके प्रिय न राम बैदेही।
तेहि त्यागिये कोटि वैरी सम यद्यपि परम सनेही।
३-जिन होवहु तिय श्रिय बिभव गजतुरंग कलबाग।
जिनके बस नर करत नहिं हरिचरणन अनुराग॥
४-सो सुख धर्म कर्म जरि जाऊ। जहँ न रामपद पंकज भाऊ॥
५-वा सोने को जारिये जाते फाटै कान।

(७७)-लेश

दो०-जहँ बरणत गुण दोष के कहै दोष गुण रूप।
भूषण ताको लेश कहि गावत सुकवि अनूप॥

(दोष को गुण मानना)

दो०-नहिं राजा ते दंड भय नहिं कछु चोर कलेस।
नाहिं दिवाले तें डरैं धनि दरिद्र को देस॥
२-कोऊ बचत न सामुहे सरजा सों रन साजि।
भली करी पिय समर ते जिय लै आये भाजि॥

३–कागा परत न बंध में अतिकटु बचन उचारि।
४–निर्गुणता जग धन्य है धिक गुणगौरवताहिं।
और विटप सुख से रहैं चंदन तरु कटि जाहिं॥
५–बालि परम हितु जासु प्रसादा। मिल्यो राम तुम शमन विषादा॥
६–जो नहिं होत मोह अति मोहीं। मिलत्यौं तातकवनबिधितोहीं॥

(गुण को दोष मानना)

१—कैद होत सुक सारिका मधुरी बानि उचारि।
२–मुनि बिनुकाजकरिय कत रोषू। कतहुं सुधाइहुं ते बड़ दोषू॥
३–सुक सारिक जो पढ़ते नाहीं। तौ कत परत पिंजरन माहीं॥
शब्द बेध शर जो न चलौते। अंध शाप कत दशरथ पौते॥
रवि शशि जो न करत परकासा। तो संतत कत फिरत उदासा॥
जो न होत रघुपति के दाया। तो बन दुख कत सहतनिकाया॥

(७८)–मुद्रा

दो०–प्रकृत अर्थ में मिलहिं पद औरहु नाम प्रकास।
मुद्रा तासों कहत हैं कवि जन सहित हुलास॥

विवरण—प्रस्तुत अर्थ के कथन करनेवाले पदों से जहां कोई दूसरा सूचनीय अर्थ भी निकलता हो, वहां मुद्रा अलंकार माना जाता है।

(यथा)

दो० -सुनि मुरली सुर धुनि सखी गो मति को सविवेक।
जमु नायकु को हित भयो सरसइ हिय धरि टेक॥

इस दोहा में प्रस्तुत अर्थ के अलावा सुरधुनि (गङ्गा) गोमति (गोमती) ज़मुना और सरसइ (सरस्वती) नदियों के नाम भी सूचित होते हैं।

(केशवकृत रामचंद्रिका में अयोध्या के वर्णन में यह छंद है ;
कविकुल विद्याधर सकल कलाधर राज राज वर वेश बनै।
गणपति सुखदायक पशुपति लायक सूर सहायक कौन गनै॥
सेनापति बुधजन मंगल, गुरुगन, धर्मराज मन बुद्धि घनी।
बहु शुभ मनसाकर करुणामय अरु सुर तरंगिनी सोभ सनी॥

इसमें अयोध्या नगरी का वर्णन प्रस्तुत है, पर साथही इस में ऐसे शब्द आये हैं जिनसे देवपुर (अमरावती) की भी सूचना मिलती है।

पुनः–यचौंमें प्रभूते यही हाथ जोरी। फिरे आपुते ना कबौंबुद्धिमोरी
भुजंगप्रयातोपमा चित्त जाको। जुरै ना कदा भूलि कै संग ताको

इस छन्द में ईश्वर प्रति विनय रूपी प्रस्तुत अर्थ के अलावा यह भी सूचित होता है कि यही छन्द 'भुजंगप्रयात' नामक छन्द का उदारहण भी है। 'यचौं' शब्द से सूचित होता है कि (य, चौं) अर्थात् चार यगण का यह छन्द होता है।

इसी प्रकार और भी समझ लेना चाहिये। कविवर जगन्नाथ प्रसाद (भानु) कृत 'छन्दप्रभाकर' ग्रन्थ के वर्णिक छन्दों में उदाहरणों में सर्वत्र यही अलंकार निबाहा गया है।

सूचना–कभी नाटक ग्रन्थ में अथवा कथा ग्रन्थ में चतुर कबि आदि में ही कोई ऐसा छन्द रख देता है कि जिससे समस्त ग्रन्थ में वर्णित कथा की सूचना मिल जाती है। ऐसे छन्द में मुद्रा अलंकार माना जाता है।

(अनर्घराघव नाटक में आदिही में सूत्रधार कहता है)

दो०–नीति रीति सों चलत तेहिं तिर्यक होत सहाय।
कुपथ चलै तेहि को तजहिं सादर ह्व जग भाय॥

(अथवा)

जो जन नय पथ विचरन लायक। तिर्यकहु तेहिं होत सहायक।
जो जग में अनीति मग भजहीं। तुरत सहोदर ह्व तेहि तजहीं॥

(इन कविताओं से नाटक की पूरी कथा की सूचना मिलती है)

बाबू हरिश्चन्द्र कृत 'मुद्राराक्षस' नाटक के आदि में यह दोहा है।

दो०—चन्द्र बिंब पूरण भये क्रूर केतु हठ दाप।
बल सों करिहै ग्रास कह जेहि बुध रच्छत आप ॥

इस दोहे से 'मुद्राराक्षस' नाटक में वर्णित चन्द्रगुप्त, मलयकेतु और बुध (चाणक्य) की काररवाई की सूचना मिलती है।

इसी प्रकार 'रत्नावली नाटिका' तथा 'प्रेमयोगिनी' में बाबू हरिश्चन्द्र ने यह दोहा नांदी में कहलाकर ग्रन्थ के वर्णन की सूचना दिलवाई है:—

दो०—भरित नेह नव नीर नित बरसत सुरस अथोर।
जयति अपूरब घन कोउ लखि नाचत मन मोर ॥

इसी प्रकार गोस्वामी तुलसीदास कृत रामायण में आरण्य कांड का यह सोरठा कांड भर की कथा की सूचना देता है।

सो०—उमा रामगुण गूढ़, पण्डित मुनि पावहिं विरति।
पावहिं मोह विमूढ़, जे हरिविमुख न धर्म रति ॥

सुन्दरकाण्ड के आदि का यह श्लोक कांड भर की कथा का सूचक है:—

अतुलितबलधामं स्वर्णशैलाभदेहं, दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामाग्रगण्यं। सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं रघुपति वरदूतं वातजातन्नमामि ॥

लंकाकांड के आरंभ का यह दोहा लंकाकांड भर की कथा का सूचक है:—

दो०—लव निमेष परमाणु युग बरष कल्प शर चण्ड।
भजसि न मन तेहि राम कहँ काल जासु कोदण्ड ॥

सूचना—फारसी और उर्दू में इस अलंकार को "मिराआतुष्वज़ीर" कहते हैं। उर्दू में इसी को 'ज़िला भी कहते हैं। एक उदाहरण यह है।

नज़र बदली जो देखी उस सनम की। नदी नालों ने फुर्सत एक दम की।

यहां प्रस्तुत अर्थ के सिवाय—बदली, नदी, नाला से अन्य सूचनीय अर्थ भी निकलते हैं।

(७६)—रत्नावली

दो०—प्रस्तुत अर्थ कहत कहँ क्रम तें औरौ नाम।
वहै रुचिर रत्नावली अलंकार सुखधाम॥

(यथा)

'रसिक चतुरमुख लच्छिमपति सकल ज्ञान के धाम'

अर्थात् हे रसिक तुम चतुरों में मुख्य हो लक्ष्मीवान हो, और संपूर्ण ज्ञान के धाम हो। यह प्रस्तुत अर्थ हुआ। परन्तु साथ ही अन्य नाम भी क्रम से निकलते हैं अर्थात् चतुरमुख=ब्रह्मा, लक्ष्मीपति=विष्णु, सकल ज्ञान के धाम=शिव।

(कवित्त)

जीतहिं जे रावत ऐरावत सों जंग अंग पुंडरीक के गनत पुंडरीक छद हैं। बावन बावन मृदु कुमुद कुमुद गनै अंजन के जैतवार अंजन से कद हैं। पुष्पदंत हू के दंत तोरैं ज्यौं पुहुपसार छीन लेत सार्वभौम हू के सदा मद हैं। प्रबल प्रतीक सुप्रतीक के जितैया रैयाराव भाऊसिंह तेरे दान के दुरद हैं।

यहां भाऊसिंह के दिये हुए हाथियों की प्रशंसा तो प्रस्तुत अर्थ है, पर साथ ही आठो दिग्गजों के नाम क्रम से निकलते हैं—अर्थात् ऐरावत, पुंडरीक, वामन, कुमुद, अंजन, पुष्पदंत सार्वभौम और सुप्रतीक। (पुनः)

रवी सिर फूल मुखै ससि तूल महीसुत वंदनबिंदु सुभाँति।
पन्ना बुध केंसर आड़ गुरौ नथ मोतिय शुक्र करै दुख शाँति।
शनी है सिंगार बिधुंतुद बार सजै झखकेतु सवै तन काँति।
निहारिय लाल भरी सुखजाल बनी यह बाल नवग्रह पाँति।

इसमें क्रम से 'नवग्रह' के नाम आये हैं—

आदित सोम कहौ कबहूं कबहूं कहौ मंगल औ बुध होते।
औ गुरु सुक्र सनीचर को कहिबो कबहूं मुख सो नहिं रीते।
मोहि न जानि परै रघुनाथहि भेंट को है दिन कौन सो चीते।
आवत जात मैं हारि परी तुम्हैं बार बतावत बासर बीते।

इसमें सातो दिनों के नाम क्रम से आये हैं। इसमें यह आवश्यक है कि कही हुई वस्तुओं का प्राकृतिक क्रम भंग न होने पावै।

(८०)—तद्गुण

दो०—छोड़ि आपनो गुण जहाँ औरन को गुण लेत।
अलंकार तद्गुण तहाँ बरनैं कवि करि हेत॥

विवरण—'गुण' शब्द का अर्थ इस अलंकार में केवल 'रंग' है। उल्लास और अवज्ञा अलंकारों में गुण का अर्थ 'धर्म' अथवा 'दोष' का विरोधी भाव है। यह अन्तर भली प्रकार समझ लेना चाहिये।

भूषण ने स्पष्ट कहा है:—

दो०—जहाँ आपनो रंग तजि गहै और को रंग।
ताको तद्गुण कहत हैं भूषण बुद्धि उतंग॥

(यथा)

१—जाहिरै जागत सी जमुना जब बूड़ै बहै उमहै यह बेनी।
त्यौं पदमाकर हीर के हारन गंग तरंगन सी सुखदेनी।

पायन के रँग सों रँगि जात सी भाँति ही भाँति सरस्वती सेनी।
जहाँ ही जहाँ वह बाल तहाँ तहाँ ताल में होत त्रिबेनी।

२–गई बिसद रँग रुचिरई भई अरुण छबि नौल।
लै मुकुता कर में करति तूं मूंगा को मौल॥

३–सोन जुही सी होति दुति मिलत मालती माल।

४–अधर धरत हरि के परत ओंठ डीठि पट ज्योति।
हरित बांस की बाँसुरी इन्द्रधनुष रँग होति।

सूचना—किसी किसी आचार्य का मत है कि 'रंग' के अलावा 'रस' और 'गंध' भी इसी अलंकार का विषय है। परन्तु हमें जितने उदाहरण इसके मिले हैं वे सब रंग ही से सम्बन्ध रखते हैं और भूषण ने तो परिभाषा ही में 'रंग' शब्द कह दिया है।

(८१)–अतद्गुण

दो० -रहे आन के संगहू गुण न आन को होय।
ताहि अतद्गुण कहत हैं कवि कोविद सब कोय॥

विवरण–तद्गुण का उलटा इसे समझना चाहिये। इसमें भी केवल रंग का विचार ही मुख्य है।

(यथा)

१- लाल बाल अनुराग सों रँगत रोज सब अंग।
तऊ न छांड़त रावरो रूप साँवरो रंग॥

२–गंगाजल सित अरु असित जमुना जलहु अन्हात।
हंस रहत तो सुभ्रता तैसिय बढ़ न घटात।

३–सिव सरजा की जगत में राजति कीरति नौल॥
अरि तिय अंजन दृग हरै तऊ धौल की धौल॥

४–कज्जल इव जमुना जलहिं ससि सम सुरसरि नीर।
न्हात न घट बढ़ स्वेतता राजहंस धनि धीर॥

(८२)—पूर्वरूप (द्विधा)

(प्रथम)

दो०—बहुरि मिलै गुण आपनो जहाँ आन के संग।
पूरबरूप तहां प्रथम भाषैं सुमति उतंग॥

(यथा)

१–लखत नीलमनि होत अलि कर विद्रुम ठहरात।
मुकुता को मुकुता बहुरि लख्यो तोहिं मुसकात॥
२–मुकुत माल हरि के हिये मरकत मनिमय होत।
पुनि पावत निजरूप लहि राधे मुख उद्योग॥
३–भूषन यों सिवराज की धाक भये पियरे अरुने रँगवाले।
लोहे कटे लपटे अति लोहु भये मुँह मीरन के पुनि लाले॥
४–(बरवारामायण) केश मुकुत सखि मरकत मनिमय होत।
हाथ लेत पुनिमुकुता करत उदोत॥

सू०—पुनि, बहुरि, फिरि, इत्यादि इसके वाचक हैं।

(दूसरा)

दो०- वस्तु बिनासे हू बहुरि तरह पीछली होत।
दूजो पूरबरूप तेहि बरनत पंडित गोत॥

विवरण—जिस वस्तु से मिलकर कुछ गुण बढ़ जाना कहा गया हो वा अनुमान कियाजाय, उसके विनष्ट हो जाने पर भी पूववत् (वैसाही जैसा उस वस्तु के साथ रहते समय था) बना रहना वर्णन किया जाय वहाँ दूसरा पूर्वरूप होता है।

(यथा)

१- अंग अंग नग जगमगत दीप सिखा सी देह ।
दिया बढ़ाये हू रहत बड़ो उजेरो गेह ॥
२--अथये हू ससि हँसनि की छाई छटा अनूप ।
३--दीप बढ़ाये हू रहै रसनामनि परकास ॥
४--अथये हू इन्दुहि तिमिर तोमहिं दियो पछैलि ।
चहूं ओर मुख चन्द की रही चांदनी फैलि ॥
भौन अँधेरहुं बीच गये मुख जोति ते वैसिये होत उज्यारी ।
६--आठयें के ससि हू के अथौत भई मुख रावरे की उजियारी ॥

(८३)--अनुगुन

(अनुगुण = गुण का और अधिक बढ़ना)

दो० पहिले को गुन आपनो बढ़ै आन के संग ।
तासों अनुगुन कहत जे जानत कबिता अंग ॥

विवरण—इस अलंकार में पिछले तीन अलंकारों की तरह केवल रंग ही का ग्रहण न समझना चाहिये वरन् सभी प्रकार के गुणों का ग्रहण समझना चाहिये ।

(यथा)

१--मुक्त माल हिय हास तें अधिक सेत ह्वै जात ।

१--भानुबंश भूषण महीप रामचन्द्र बीर रावरो सुजस फैल्यो आगर उमंग में । कबि लछिराम अभिराम दूनो शेष हू सों चौगुने चमकदार हिमगिरि गंग में । जाको भट घेरे तासों अधिक परै है और पचगुनो हीराहार चमक प्रसंग में । चंद मिलि नौ गुनो नछत्र सों सौगुनो ह्वै सहसगुनो भो छीर सागर तरंग में ।

३-कज्जल कलित अँसुवान के उमंग संग दूनो होत रोज रंग
जमुना के जल में।

४-मनिमानिक मुकताछबिजैसी। अहिगिरिगजसिरसोहनतैसी॥
नृप किरीट तरुनी तनु पाई। लहैं सकल सोभा अधिकाई॥

नोट-इस चौपाई में क्रमालंकार भी है। परन्तु हमारा लक्ष्य केवल चौथा चरण है।

५-(बरवा) चंपक हरवा अँग मिलि अधिक सोहाय।

(८४)—मीलित

दो०-दुइ चीजैं इकरंक जहँ मिले न भेद लखाय।
मीलित तासों कहत हैं कबि कोविद हरषाय॥

१-मरकत मनि अलि सीस पै नेकहुँ नाहिं लखात।
सुबरन के भूषन सिया तन सुबरन मिलि जात।

२-अधर पान अंजन नयन लगो महाउर पाय।
सिय तन ये दरसत नहीं अंगन रहे समाय॥

३-बेनुहरितमनिमय सब कीन्हे। सरल सपर्न परहिं नहिं चीन्हे॥

४-पँखुरी लगी गुलाब की गात न जानी जाय।

५-पान पीक अधरान में सखी लखी नहिं जाय।
कजरारी अँखियान में कजरा री न लखाय॥

(८५)—उन्मीलित

दो०-जहँ मीलित में हेतु लहि कछुक भेद बिलगाय।
उन्मीलित, सुरसरि मिले ज्यों जमुना लखि जाय॥

(यथा)

१-समझो परत सुगन्ध तें तन केसर को लेप।

२–चंपक हरवा अँग मिलि अधिक सोहाय। जानि परै सिय हियरे जब कुम्हिलाय।

३- दो०--चंपक तन घन बरन बर रह्यौ रंग मिलि रंग।
जानी जात सुबास ही केसर लाई अंग॥

४–सम प्रकास तम पाख दुहुँ नाम भेद बिधि कीन्ह।
ससि पोषक सोषक समुझि जग जस अपजस दीन्ह॥

५ शिव सरजा तव सुजस में मिले धवल छबि तूल।
बोल बास तें जानिये हंस चमेली फूल॥

पुन --मिलि चंदन बेंदी रही गोरे मुख न लखात।
ज्यों ज्यों मद लाली चढ़ै त्यों त्यों उघरत जात॥

सूचना–स्मरण रखना चाहिये कि तद्गुण और अतद्गुण अलंकारों में केवल 'रंग' का ही विषय वर्णित होता है। मीलित और उन्मीलित में केवल 'रंग' ही नहीं वरन, रस, गंध के भी विषय वर्णित होते हैं। आगे सामान्य और विशेषक अलंकार लिखे जायेंगे जिनमें 'आकार' वर्णित विषय होता है। इन अलंकारों का भेद खूब बारीकी से समझना और स्मरण रखना चाहिये।

(८६)–सामान्य

दो०- बस्तु दोय आकार इक भेद न परै लखाय।
तहँ सामान्य बखानहीं अलंकार कविराय॥

(यथा)

१–एक रूप तुम भ्राता दोऊ।

२–नाहिं फरक श्रुतिकमल अरु हरिलोचन अनिमेष।

यहाँ कान में खोंसे हुए प्रस्फुटित कमल पुष्प के दलों और कृष्ण के अनिमेष नेत्रों में आकार की एकता से भेद नहीं ज्ञान पड़ता।

३-जानी न जात मसाल औ बाल गोपाल गुलाल चलावत चूक।
(यहाँ भी आकार ही के विचार से एकता है)

(भुजंगप्रयात)

४-भगी देखिकै शंकि लंकेस बाला। दुरी दौरि मंदोदरी चित्रशाला।
तहाँ दौरि गो बालि को पूत फूल्यौ। सबै चित्रकी पुत्रिका देखिभूल्यो।
५-गहै दौरि जाको तजै ताकि ताको। तजै जा दिशाको भजै बामताको।
भले कै निहारी सबै चित्रसारी। लहै सुन्दरी क्यों दरीको बिहारी॥

लंका में युद्ध होते समय अंगद और हनुमान रावण के रनिवास में घुसकर मंदोदरी को पकड़ना चाहते हैं। मंदोदरी चित्रसारी में जा घुसी और वहाँ बनी हुई तसवीरों में ऐसी मिल गई (आकार की समता से) कि अंगद यह नहीं जान सके कि कौन चित्र है और कौन असल मंदोदरी है। (रामचंद्रिका)

६-भरत राम एकै अनुहारी। सहसा लखि न सकैं नर नारी॥
लखन सत्रुसूदन इकरूपा। नख सिख तें सब अंग अनूपा॥

(८७)—विशेषक

दो० -सामन्यहि में जहँ कछू कैसहुँ भेद जनाय।
ताहि विशेषक कहत हैं सब कबि कोबिदराय॥

विवरण-पूर्वोक्त 'सामान्य' अलंकार ही में (आकार का विचार लिये हुए) जहाँ किसी कारणवश दोनों वस्तुओं का भेद ज्ञात हो जाय वहाँ विशेषक, अलंकार होगा। जैसे—

१-दो० -मनमोहन मनमथन को द्वै कहतो को जान।
जो इनहू कर कुसुम को होतो बान कमान॥

अर्थात् श्रीकृष्ण और कामदेव एकही रूप और आकार के हैं, भेद यों जाना जाता है कि कृष्ण के हाथ में फूलों के धनुषबाण नहीं हैं।

२–भूषन भनत एते मान घमसान भयो जान्यों न परत कौन आयो कौन दल ते। सम वेष ताके तहाँ सरजा सिवा के बाँके बीर जाने हाँके देत मीर जाने चलते।

३–कागन में मृदु बानि तें मैं पिक लियो पिछानि।

(८८)–विशेषकोन्मीलित

दो०–जहँ बिशेषकोन्मिलित मिलि भेदहिं प्रगटै आय।
तहँ बिशेषकोन्मिलित है कहत सुकवि समुदाय॥

जहाँ उन्मीलित और विशेषक दोनों का मेल पाया जाय वहाँ यह अलंकार कहा जाता है।

(यथा)

१–ससि में मुख में भेद कछु नेकु न परत लखाय।
बिन कलंक अरु बास तें सिय मुख जानो जाय॥

२–बय बपु बरन रूप सोइ आली। सील सनेह सरिस समचाली।
बेष न सो सखि. सीय न संगा। आगे अनी चली चतुरंगा।

सूचना–(गुमान कवि कृत) नैषधकाव्य में 'पंचनली' का प्रसंग देखो।

दमयंती के स्वयंवर में राजा 'नल' आये हैं। इन्द्र अग्नि यम और वरुण देवता भी राजा नल ही का रूप (ज्यों का त्यों) धारण कर स्वयंवर में बैठे हैं। इस प्रकार 'नल' के पांच रूप देख कर दमयन्ती घबराई है कि इन पाँचो में से असली 'नल' कौन है। सरस्वती का स्मरण करके दमयंती विचारने लगी है, तब भेद स्फुरित हुआ है। वह काव्य यों है—

सुनि कै यह अद्भुत बात नई। पँचह्न नल ओर चकी चितई।
नहिं पावत है निरधार कियो। धरको हियरा तन ताप लियो।
सुर चारि आनँद सो पगे। नहिं पायँ भूतल में लगे।
नल के लगे पग मेदनी। लखि जानि जाति नितंबिनी।

सुर के सरीरन में कहीं। कन रेनु के लखिये नहीं।
नल देह पै दुति पाय कै। जनु भूमि भेंटत चाय कै।
नल के पल लोयन माहिं लगैं। सुर नैनन में न निमेष लगैं।
सुर सीस न फूल मलीन भये। नल के सिर के कुम्हिलाय गये।
इन भेदन सों नलको पहिचानो। चित अंतर सिंधु सुधाहि समानो।

इस कविता में 'विशेषकोन्मीलित अलंकार है।

केवल 'उन्मीलित' इसलिये नहीं है, कि शुद्ध उन्मीलित में केवल एक वस्तु में कोई विशेषता सूचक बात कही जाती है, इसमें दोनों वस्तुओं (देवता और नल) में विशेषता सूचक चिन्ह कहे गये हैं। और केवल 'विशेषक' इसलिये नहीं है कि 'विशेषक' में केवल 'आकृति' की ही समानता वर्णन की जाती है अन्य गुणों की नहीं। इसमें आकृति के अलावा अन्य गुणों अर्थात् रूप रंग कोमलता इत्यादि की भी समता (राजा नल और देवताओं की) विवक्षित है।

(८६)—गूढ़ोत्तर

दो०—अभिप्राययुत ज्वाब जहँ कहिं गूढ़ोत्तर सोय।
प्रश्न मानि लीजै कहूं कहुँ पूंछे पर होय॥

विवरण—जहाँ कुछ गूढ़ अभिप्राय सहित उत्तर का वर्णन हो, वहाँ यह अलंकार होता है। यह दो प्रकार से हो सकता है। एक वहाँ जहाँ केवल उत्तर कहा जाता है और उसी उत्तर से कल्पना कर ली जाती है कि ऐसा प्रश्न किया गया होगा। दूसरा प्रश्न सहित कहा जाता है।

(१)-कल्पित प्रश्न का

दो०-घाम घरीक निवारिये कलित ललित अलिपुंज।
जमुना तीर तमाल तरु मिलति मालती कुंज॥

(बिना पूँछे ही स्वयं अपना परिचय देने में सर्वत्र यही अलंकार होगा। जैसे तुलसीकृत रामायण के सुन्दरकांड में बिना हनुमानजी के पूछे ही विभीषण अपना परिचय दे चले हैं) देखो—

सुनहु पवनसुत रहनि हमारी। जिमि दसनन महँ जीभ बिचारी।
इत्यादि......

(इसमें विभीषण का गूढ़ अभिप्राय अपनी दीनता दिखाकर रामदूत की कृपा संपादन करना था)

हनुमान जी जब संजीवनी लेने जाते थे, तब कालनेमि राक्षस कपटमुनि के भेष से बिना पूँछे ही कह चला है:—
होत महारन रावन रामहि। जितिहैं राम न संशय यामहिं॥
यहाँ भये मैं देखौं भाई। ज्ञान दृष्टिबल मोहि अधिकाई॥ आदि

(इसमें गूढ़ अभिप्राय अपने प्रति विश्वास उत्पन्न करा के हनुमानजी को ठगना था)

इसी प्रकार अन्य स्थानों में भी समझ लेना चाहिये।

सूचना-स्वयंदूतिका नायिका के वचनों में सर्वत्र यही अलंकार होता है।

(२) प्रश्न सहित

(रावण और हनुमान का प्रश्नोत्तर)

कपि कौन तू ? सुत अक्षय घातक, कौन बल ? रघुनाथ के।
रघुनाथ को ? खर दूषणांतक, अनुज लक्ष्मण साथ के॥
लखन को ? तव भगिनि जानति, परशुधर मद जेहि हत्यो।
परशुधर को ? सहसभुजरिपु दीप जेइ तव सिर धत्यो।
पठवा जो केइ ? सुग्रीव, को, हरि बाल सोदर जानिये।
कपि बालि को ? तुम रह्यो जाकी काँख में सुधि आनिये।
किमि सिंधु नाँघो ? गोपद ज्यों, केहि हेत ? सिय चोरै लखे।

सिय कौन? कन्या जनक की तुम बाण गे जाके मखै।
कस बाण? सोइ बलिसुवन जेइ तोहिं बाँधि नाच नचायऊ॥
को कहत यहि विधि? पद्मिनी जेइ जलधि माँझ चलायऊ॥
(इसमें हनुमानजी का गूढ़ अभिप्राय रावण को लज्जित करना है)

दो०—बाल कहा लाली परी लोयन कोयन मांह।
लाल तिहारे दृगन की, परी दृगन में छांह॥

(६०)—चित्रोत्तर

(यह अलंकार दो प्रकार का है)

(प्रथम)

दो०—जहँ बूझत कछु बात के उत्तर सोई बात।
प्रथम चित्र तेहि कहत हैं सकल सुकवि अवदात॥

विवरण—जिन शब्दों में प्रश्न किया जाता है वेही शब्द उत्तर के भी हो जाते हैं।

(यथा)

१—दो०-कोहै जारत अगिन बिनु? कोरे नेह बिहीन!
२—तात कहाँ ते पाती आई?
३—का वर्षा जब कृषी सुखाने?
४—को कहिये जल सों सुखी? को कहिये पर श्याम?
का कहिये जे रस बिना? को कहिये सुख बाम?

१—प्रथम उदाहरण में, (प्रश्न) बिना अग्नि के कौन जलाता है। (उत्तर) कोह (क्रोध) ही बिना अग्नि के जलाता है। (प्रश्न) नेहहीन व्यक्ति को क्या कहते हैं? (उत्तर) नेहविहीन व्यक्ति को 'कोरा' कहते हैं।

२-दूसरे उदाहरण में भरतजी राजा दशरथ से पूंछते हैं। (प्रश्न) हे तात यह पाती (पत्री) कहां से आई है? इन्हीं शब्दों में राजा दशरथ का उत्तर भी हो जाता है (उत्तर) तात (रामचन्द्र) के यहाँ से पाती आई है।

३-तीसरे उदाहरण में भी ठीक इसी प्रकार समझो।

४-चौथे उदाहरण में, (प्रश्न) जल से किसको सुखी कहना चाहिये। (उत्तर) कोक (चक्रवाक) का हृदय जल से सुखी होता है। (प्रश्न) जिसके पर काले हों उसे क्या कहते हैं (उत्तर) काक (कौवा) का सीना और पर श्याम होते हैं (प्रश्न) जे रसहीन हैं उन्हें क्या कहना चाहिये? (उत्तर) जे अरसिक हैं उन्हे काक (हृदय कहना चाहिये। (प्रश्न) स्त्री किसके लिये सुखरूप है (उत्तर) स्त्री कोक (चक्रवाक) के लिये सुखरूप है।

२-(दूसरा)

दो०--बहुती बातन को जहाँ उत्तर दीजै एक।
चित्रोत्तर सो दूसरो कहैं सुकबि सबिवेक॥

(यथा)

सो०-गाउ, पीठ पर लेहु, अंगराग करु हार करु।
ग्रह प्रकास करि देहु, कृष्ण कह्यो सारँग नहीं॥

इसमें राधिकाजी के पाँच वाक्य हैं (१) गाओ (२) पीठ पर लेलो (३) अंगराग करदो (४) माला बनादो (५) घर में प्रकाश करदो। इन पाँचों का उत्तर कृष्ण ने एक बात कहकर दिया कि "सारँग नहीं है"। "सारँग" शब्द अनेकार्थवाची है। यहाँ इसके अर्थ यों हैं (१) बीणा (२) घोड़ा (३) चंदन (४) फूल (५) दीपक।

दो०-को हरि बाहन? जलधिसुत? काको हाथ जहाज।
चतुर सुकवि उत्तर दियो एक बचन 'द्विजराज'॥

यहाँ तीन प्रश्न हैं? सबका उत्तर 'द्विजराज' शब्द है। (१) गरुड़। (२) चंद्रमा (३) ब्राह्मण।

दो०-को मरु भुव पालत सुअब, को नित थिर जु रहंत।
यूरुप पद्वी कौन मुख जानहु प्रिय जसवंत॥

(प्रश्न) मरुभूमि का इस समय कौन पालन करता है?
उत्तर-जसवंत-(महाराजा जसवंतसिंह)
(प्रश्न) नित्य कौन स्थिर रहता है?
उत्तर-जसवंत=(यशस्वीपुरुष)

(प्रश्न) यूरुप में कौन सी पदवी मुख्य मानी जाती है। उत्तर-'ज' और 'स' वाली पदवी अर्थात् जी० सी० (G. C.)
प्यावहु बारि, विदारहु मृगवर।'सर' ढिग नाहिं प्रिया यहि अवसर॥

पुनः

दो०—पंथी प्यासो जाय, गदहा रहै उदास क्यों।
उत्तर दीन बताय, एक बचन 'लोटा न था'।

दो०-को रन में सनमुख लरत? को तमरिपु भरपूर।
उदर व्याधि अति कठिन का? सुकवि 'दीन' कह 'सूर'

इसमें तीन प्रश्न हैं। तीनों का उत्तर 'सूर' शब्द से हो जाता है।

(९१)—सूक्ष्म

दो०-सूक्ष्म कृति लखि आन की करै क्रिया कछु भाय।
ताको नाम बखानहीं सूछम सब कबिराय॥

विवरण—दूसरे का किया हुआ कोई सूक्ष्म कृत्य (इशारा वा चेष्टा) देखकर इशारे ही से उसका उत्तर देने वा समाधान कर देने के वर्णन में यह अलंकार होता है। इस अलंकार के लिये यह ज़रूरी है कि इशारा वा कोई कृत्य दोनों ओर से होना चाहिये। आगे जो 'पिहित' अलंकार है, उसमें और इसमें यह भेद है कि इसमें एक कोई तात्पर्य सूचक क्रिया करेगा, तब दूसरा उसके उत्तर में कोई साभिप्राय चेष्टा करेगा और पिहित में एक के आकार से (बिना किसी क्रिया के) उसका छिपाहुआ वृत्तान्त समझकर दूसरा कोई ऐसी क्रिया करेगा जिससे प्रगट हो जाय कि वह उसका छिपाया हुआ वृत्तान्त जानगया। यथाः—

१–सीतहिं सभय देखि रघुराई। कहा अनुज सन सैन बुझाई॥

यहाँ सूपनखा का विकट रूप देखकर सीताजी ने भय-सूचक कोई चेष्टा की तब रामजी ने सीता का समाधान करने के लिये इशारे से लक्ष्मणजी से सूपनखा के नाक कान काट लेने का इशारा किया।

२–बिनय प्रेम बस भई भवानी। खसी माल मूरति मुसकानी॥

यहाँ विनय से भवानीजी सीताजी के मन का अभिप्राय समझ गईं और मुसकाकर अपना तात्पर्य भी जता दिया।

३–गौतम तिय गति सुरति करि नहिं परसति पदपानि।
मन बिहँसे रघुबंसमनि प्रीति अलौकिक जानि॥

४–सो०–सुनि केवट के बैन प्रेम लपेटे अटपटे।
बिहँसे करुनाऐन चितै जानकी लखन तन।

(६२)–पिहित

दो०–जहाँ छिपे पर वृत्त को समुझि करै कछु काज।

जाते प्रकटै जानिबो, सो पीहित कविराज ॥

विवरण—'पिहित' शब्द का अर्थ है "आच्छादित"। जहाँ अपना हाल छिपानेवाले व्यक्ति के प्रति कोई ऐसी क्रिया की जाय जिससे जान पड़े कि उसका वह हाल क्रिया करनेवाले को ज्ञात हो गया, वहाँ यह अलंकार होता है-जैसे सतीजी ने सीता का रूप धरकर रामजी को धोखा देना चाहा वहाँ तुलसीदासजी कहते हैं:—

१—"सती कपट जाना सुरस्वामी।"
जोरि पानि प्रभु कीन्ह प्रनामू। पिता समेत लीन्ह निज नामू।

२—गैरमिसिल ठाढ़ो सिवा अन्तरयामी नाम।
प्रगट करी रिस साह सों सरजा करि न सलाम॥

३—आनि मिलो अरि यों गह्यो चखन चकत्ता भाव।
साहि तनय सरजा सिवा दियो मुच्छ पर ताव॥

४—जल को गये लक्खन हैं लरिका परिखौ पियछाहँ घरीक ह्वै ठाढ़े
पोंछि पसेउ बयारि करौं अरु पाँय पखारिहौं भूभुरि डाढ़े।
तुलसी रघुबीर प्रिया स्रम जानि कै बैठि बिलंब सो कंटककाढ़े।
जानकी नाह को नेह लखे पुलकी तनु बारि बिलोचन बाढ़े॥

वनगमन समय राह में चलने से थककर सीताजी ने लक्ष्मणजी को पानी लेने भेजा है। तदनंतर अपनी थकावट छिपाते हुए लक्ष्मण के आने तक महाराज से परखने का अनुरोध करती हैं। रामजी ने उनका तात्पर्य समझ लिया और एक वृक्ष के नीचे बैठकर बड़ी देर तक अपने पैरों से काँटे निकालते रहे। (चौथा चरण छन्द पूर्ति के लिये लिख दिया है) यहाँ पिहित अलंकार की पूर्ति केवल तीन ही चरणों में होगई है।

(६३)—व्याजोक्ति

व्याज=बहाना उक्ति=कथन=बहाने की बात।

दो०—कछु मिस करि कछु और बिधि कहै दुरै कै रूप।
सबै सुकबि व्याजोक्ति तेहि भूषण कहैं अनूप॥

विवरण—किसी खुलती हुई बात वा वृत्तान्त को छिपाने की इच्छासे कोई बहाने की बात कहना। छेकापन्हुति में निषेध-पूर्वक छिपाना होता है, इसमें विना निषेध के। सूक्ष्म और पिहित में क्रिया से और इसमें 'वचन' से काम लिया जाता है। यथाः—

तुलसीकृत रामायण में राजा भानुप्रताप और कपट मुनि के प्रसंग में राजा अपने को छिपाने के लिये कहता हैः—

१—"भूप प्रतापभानु अवनीसा। तासुसचिव मैं सुनहु मुनीसा"।

पुष्पवाटिका में जब सीताजी रामछवि देखकर मोहित हुईं और आँख मूंदकर रामजीके ध्यान में मग्न हुईं तब एक चतुर सखी ने अन्य सखियों से सीताजी की मोहावस्था छिपाने के लिये यह कहा किः—

२—'बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू, भूप किसोरि देखि किन लेहू'॥

३—सिवा बैर औरँग बदन लगी रहै नित आहि।
कबि भूषण बूझे सदा कहै देत दुख साहि॥

(साहि=शाही=राज्य)

४—कारे वरन डरावने कत आवत यहि गेह।
कइ बा लख्यो सखी लखे लगै थरहरी देह॥

सवैया—साहिन के उमराव जितेक सिवा सरजा सब लूटि लयेहैं।
भूषन ते बिन दौलतिह्वै कै फकीर ह्वै देस बिदेस गये हैं॥
लोग कहैं इमि दक्षिन जेय सिसौदिया रावरे हाल ठये हैं।
देत रिसाय कै उत्तर यों हमहीं दुनिया ते उदास भये हैं॥

(६४)—गूढ़ोक्ति

दो०—औरै प्रति उद्देश्य करि कहै और सों बैन।
ताहि कहत गूढ़ोक्ति कबि जिनकी मति अति पैन॥

विवरण—किसी दूसरे को कोई विशेष सूचना देने के अर्थ किसी अन्य प्रति कोई बात कहना जिससे वह सुनले और समझ ले। जैसेः

१—"पुनि आउब यहि बेरियाँ काली" (रामायण)

२—सुनिये बिटप! हम पुहुप तिहारे अहैं राखिहौ हमैं तो सोभा रावरी बढ़ावैंगे। तजिहौ हरषि कै तो बिलग न मानैं कछु जहाँ जहाँ जैहैं तहाँ दूनो जस पावैंगे। सुरन चढ़ैंगे नर सिरन चढ़ैंगे पर सुकबि 'अनीस' हाथ हाथन बिकावैंगे। देस में रहैंगे परदेस में रहैंगे काहू भेस में रहैंगे तऊ रावरे कहावैंगे।

३—बृष छाँड़ो पर खेत को आवत यहि रखवार।

४—साँझ सखी मैं जाइहौं पूजन देव महेस।

५—रे हरिना अब भागु द्रुत बारी करु न बिहार।
या बारी को देखियत आवत राखनहार॥

सूचना—प्रस्तुतांकुर और इसमें यह भेद है कि इसमें कहनेवाले का मुख्य तात्पर्य सुननेवाले से होता है, जिससे बात कही जाती है उससे नहीं। प्रस्तुतांकुर में कहनेवाले का मुख्य तात्पर्य उससे होता है जिसके प्रति बात कही जाय, सुननेवाला भी उससे लाभ उठावे तो अच्छा ही है नहीं तो कोई आग्रह नहीं। प्रस्तुतांकुर मुख्यतः उपालंभ वर्णन के लिये ही है, और यह अलंकार सूचनार्थ हैं।

(९५)—विवृतोक्ति *

दो०—छिप्यो अर्थ जो श्लेष सों प्रगट करै कबि ताहि।
विवृतोक्ति तासों कहैं सकल सुमति कबिराय॥

---

* सू०—किसी किसी का मत है कि विवृतोक्ति गूढ़ोक्ति में और गूढ़ोक्ति सूक्ष्म में अन्तर्भूत है।

विवरण—श्लिष्ट शब्दों द्वारा कहे हुए गुप्त अर्थ को कवि स्वयं खोल दे उस कथन को विवृतोक्ति कहते हैं—(विवृत शब्द का अर्थ खोला हुआ वा उद्घाटित)

दो०—तजौ निकुंजहिं इत कहत जब तब स्याम भुजंग।
यों काहू सखि सिख दै सबनि रखी चतुर तियसंग॥
जो गोरस चाहत लियो तो आवहु मम धाम।
यों कहि याचक सों हरिहिं किय सूचित निजकाम॥
पुनः—वृष भागो पर खेत तें, कहत जताये सैन।

(९६)—युक्ति

दो० ठगै क्रिया करि आन को मरम छिपावन हेत।
युक्ति बतावत ताहि को सिगरे सुमति निकेत॥

विवरण— पूर्व के तीन अलंकारों में "वचन चातुरी से" कुछ छिपाने की बात कही गई है। इस अलंकार में कोई मर्म की बात वा घटना किसी "क्रिया द्वारा" छिपाने की मुख्यता है इसलिये यह अलंकार उससे भिन्न है।

(यथा)

लिखत रही पिय चित्र तहँ आवत लखि सखि आन।
चतुर तिया तेहि कर लिखे फूलन के धनु बान॥

सूचना—न कहने योग्य बात को किसी चेष्टा से प्रगट कर देने में भी यही अलंकार मानना पड़ता है। जैसे एक सज्जन के पास एक गूँगा नौकर था। उस सज्जन ने उससे कहा कि एक पैसे का मुरदासंख (मुर्दासंग) ला दे। वह नौकर पैसा लेकर पसारी के पास गया और पसारी के सामने पहले मुर्दा सा होकर लेट रहा, फिर उठ कर शंख बजाने की सी मुद्रा दिखला कर पैसा उसके सामने रख दिया। पसारी था चतुर, उसने उसकी चेष्टा से बात समझ ली और एक पैसे का मुर्दासंख देकर उसे बिदा किया।

फरो मृतक के रूप पुनि संखाकृति किय शोर।
दियो सु मुरदासंख तेहि बनिया बुद्धि अथोर॥

तुलसीकृत रामायण में वन में जब ग्रामस्त्रियों ने सीताजी से उनके साथ राम लक्ष्मण का सम्बन्ध पूछा है तब लक्ष्मण जी के लिये सीता ने कह दिया किः—

सहज सुभाव सुभग तन गोरे। नाम लषन लघु देवर मोरे॥

पर रामजी का संबंध बतलाते हुए सीताजीने कुछ चेष्टाओं से ही काम लिया है जिसे गोस्वामीजी ने यों कहा हैः—

बहुरि बदन बिधु अंचल ढाँकी। पिय तन चितै भौंह करि बांकी॥
खंजन मंजु तिरीछे नैनन। निज पति कहेउ तिनहिं सिय सैनन॥

यहाँ भी युक्ति अलंकार माना जायगा। इसलिये ऊपर लिखी हुई परिभाषा (यद्यपि प्राचीन है) हमारी सम्मति में ठीक नहीं जँचती। हमारे सम्मत्यनुसार वह परिभाषा यों होनी चाहिये।

मर्म छिपावन हेतु वा मर्म जनावन हेत।
करै क्रिया कछु 'युक्ति' तेहि भाषत सुकविसचेत॥

'सूक्ष्म' और 'पिहित' अलंकारों से इसमें प्रत्यक्ष विभिन्नता है, जो परिभाषा पढ़नेमात्र से प्रगट हो जाती है।

गोस्वामी तुलसीदास ने 'बरवा रामायण' में इस युक्ति अलंकार का एक और भी बहुत अच्छा उदाहरण लिखा है।

वेद नाम कहि अँगुरिन खंडि अकास।
पठयो सूपनखाहि लखन के पास॥

वेद = श्रुति = कान। अकास = नाक = नासा।

तात्पर्य यह कि रामजी ने युक्ति से लक्ष्मणजी पर अपना मर्म प्रगट कर दिया कि इसके कान और नाक काट लो।

यदि कोई कहे कि इसमें 'सूक्ष्म' अलंकार है तो ठीक

नहीं क्योंकि सूक्ष्म में दोनों ओर से केवल इशारे से ही बात होनी चाहिये। इसमें इशारे से रामजी की आज्ञा है, जिसका पालन लक्ष्मणजी ने कृत्य द्वारा किया है। इस हेतु यहाँ युक्ति अलंकार ही मानना चाहिये।

'युक्ति' का अर्थ है 'हिकमत' 'चतुराई'। इसलिये हिकमत से अपना कर्म छिपाना वा अपना तात्पर्य प्रगट करना दोनों दशाओं में यह अलंकार हो सकता है। यह जरूरी नहीं है कि मर्म छिपाने ही में हिकमत से काम लिया जाय अन्यथा नहीं। हाँ हम यह बात मानने के लिये तैयार हैं कि मर्म छिपाने में अधिक बारीक हिकमत की जरूरत होती है।

(९७)—लोकोक्ति

दो० लोकोकति जहँ लोक की कहनावत ठहराउ।
राजा करै सो न्याउ है, पासा परै सो दाउ॥

(यथा)

१—फिरे रैहै न रैहै यहौ समयो बहती नदी पायँ पखार ले री।
२—भो बिधना प्रतिकूल जबै तब ऊँट चढ़े पर कूकर काटत।
३—वृथा मरहु जनि गाल बजाई। मनमोदकनि कि भूख बुझाई।
४—देव कहा हम तुमहि गोसाईं। ईंधन पात किरात मिताई॥
कर्म प्रधान विश्व करि राखा। जो जस करै सो तस फल चाखा॥

सूचना—अँगरेजी में इसे ईडियम (Idiom) कह सकते हैं। फारसी और उर्दू में इस अलंकार को "इरसालुल मसल" कहते हैं।

स्मरण रखना चाहिये कि केवल लोकोक्ति मात्र के कथन में अलंकार न होगा। प्रसंग बनाकर अन्त में लोकोक्ति पर घटित करने से अलंकारता आवेगी।

हिन्दी-साहित्य में 'ठाकुर' (बुंदेलखंडी) कविकी कविता में लोकोक्तियों की योजना सराहनीय मानी जाती है।

(६८)—छेकोक्ति

दोहा—जहँ परार्थ की कल्पना लोकउक्ति में होय।
छेकोकति तासों कहैं कबि कोबिद सब कोय॥

विवरण—जहाँ लोकोक्ति का प्रयोग साभिप्राय हो अर्थात् पहले कोई बात कहके उपमान वाक्य की भाँति लोकोक्ति कही जाय, वहाँ छेकोक्ति होगी।

(यथा)

१—दो०—जे सोहात सिवराज को ते कवित्त रसमूल।
जे परमेश्वर पै चढ़ैं तेई आछे फूल॥

२—दुरावत हौ सहवासिनसों 'रघुनाथ' वृथा बतियान के जोर।
सुनौ जग में उपखान प्रसिद्ध है चोरन की गति जानत चोर॥

३—औरँग जो चढ़ि दक्खिन आवै तो ह्यां ते सिधावै सोऊ बिन कप्पर। दीनो मुहीम को भार बहादुर छागो सहै क्यों गयंद को झप्पर। सासता खाँ सँग वे हठि हारे जे साहेब सातएँ ठाँ के भुवप्पर। ये अब सूबहु आवैं सिवा पर कालिह के जोगी कँलीदे को खप्पर॥

४—छिति नीर कृसानु समीर अकास ससी रविहू तन रूप धरै।
अरु जागत सोवत हू मतिराम सो आपनी जोति प्रकास करै।
जग ईस अनादि अनंत अपार वही सब ठौरन में विहरै।
सिगरे तन मोहन मोय रहे, तिन ओट पहार न देखि परै॥

५—सत्य सराहि कह्यो बर देना। जानेहु लेइहि माँग चबेना॥

(६६)—बक्रोक्ति

दो०—जहां श्लेष सों चतुर नर अर्थ लगावै और।
ताहि कहत बक्रोक्ति हैं सिगरे कबि सिरमौर॥

विवरण—वक्रोक्ति दो प्रकार की होती है:—(१) शब्द मूला (२) अर्थमूला। शब्दमूला वक्रोक्ति की व्याख्या शब्दालंकार में देखो। यहाँ केवल अर्थमूला वक्रोक्ति का वर्णन है।

जहाँ श्लेष से अर्थ का उलट फेर हो जाय, वहाँ वक्रोक्ति अलंकार होगा। जैसे:—

१—भिक्षुक गो कित को गिरिजे? सुतो माँगन को बलिद्वार गयो री।
नाच नच्यो कित हो भवभाम, कलिन्दसुता तट नीके ठयो री।
भाजि गयो वृषपाल सु जानत? गोधन संग सदा सुछयो री।
सागर-सैल सुतान के आज परस्पर यों परिहास भयो री।

यहाँ भिक्षुक, नाच नच्यो और वृषपाल शब्द शिलष्ट हैं। लक्ष्मीजी इन्हीं शब्दों से शिव का इंगित करती हैं और पार्वतीजी इन्हीं शब्दों का अर्थ फेर कर विष्णु पर आरोपित कर देती हैं। इस से वक्रोक्ति है। और यह अर्थ-वक्रोक्ति इसलिये है कि यदि हम 'भिक्षुक, के स्थान पर 'मगन, 'नाचनच्यो, के स्थान पर 'नृत्य कियो' और 'वृषपाल' के स्थान पर गोपाल वा पशुपाल शब्द रखदें तो भी अर्थ और युक्ति ज्यों की त्यों रहेगी। शब्दालंकारवाली उक्तियों के शिलष्ट शब्दों को इस प्रकार नहीं बदल सकते। इसी से वे शब्दालंकार के उदाहरण हैं, और यह अर्थालंकार का उदाहरण है।

काकु से जो वक्रोक्ति होती है वह शुद्ध शब्दालंकार है, क्योंकि वहाँ विलक्षण प्रकार की कंठध्वनि के कारण अर्थ में हेर फेर होता है, और कंठध्वनि कान से सुनने का विषय है। कान का विषय होने के कारण वह शब्दालंकार ही है।

(१००)—स्वभावोक्ति

दो० जाको जैसो रूप गुण बर्णत ताही साज।
सुभावोक्ति भूषण तहाँ कहैं सबै कबिराज॥

विवरण-जाति वा अवस्था के अनुसार जिसका जिस समय जैसा प्राकृतिक कृत्य हो वैसाही कहना स्वभावोक्ति अलंकार है इसके दो प्रकार हैं; (१) सहज (२) प्रतिज्ञाबद्ध।

(१) सहज

१-दो०-धूरि धुरेटे धरनिमें धरत लटपटे पाय।
लाल अटपटे आखरन भाषत सखि हरषाय॥

२-धूसर धूरि भरे तनु आये, भूपति विहँसि गोद बैठाये॥

३-दो० -भोजन करत चपल चित इत उत अवसर पाय।
भागि चलत किलकात मुख दधि ओदन लपटाय॥

[कृष्णबानिक]

४-सीस मुकुट कटि काछनी कर मुरली उर माल।
यहि बानिक मो उर बसौ सदा विहारी लाल॥

[तुरंग स्वभाव]

५-जित रुख पावै तितै पहुँचावै छन आवै छन जावै।
जमिजमि थमिथमि थिरकि भूमिपर गति नहिं तेहि दरसावै।
फांदत चंचल चारु चौकड़ी चपलहु के चख झांपै।
भरत कुँवर को तुरँग रँगीलो बरणि जाय कहु कापै॥

[कुलस्वभाव]

६-कहौं सुभाव न कुलहिं प्रसंसी। कालहु डरहिं न रन रघुवंसी।
७-रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाइ बरु बचन न जाई॥

(तात्पर्य यह कि जिस समय जिसका जैसा रूप गुण हो उस समय वैसाही कहना)

चना-किसी का कोई स्वाभाविक गुण साधारणतः प्रगट नहीं होता वरोह

किसी मनोविकार वा उत्तेजना के समय प्रतिज्ञा रूप से प्रगट होता है। उसे प्रतिज्ञाबद्ध स्वभाव कहते हैं। ऐसे स्वभाव का वर्णन भी स्वभावोक्ति ही कहा जाता है। जैसेः—

२ (प्रतिज्ञाबद्ध स्वभावोक्ति)

१—सिव संकल्प कीन्ह मन माहीं। यहि तन सितिहि भेट अब नाहीं

१—दो०- तोरौं छत्रकदंड जिमि तुव प्रताप बल नाथ।
जौं न करौं प्रभु पद सपथ पुनि न धरौं धनु हाथ॥

३—जो सत संकर करैं सहाई। तदपि हतौं रन राम दोहाई॥

सूचना—ऐसी स्वभावोक्ति सशपथ वा असम्भव कथन द्वारा भी प्रगट की जाती है यथाः—

(कवित्त)

४—बांरि टारि डारौं कुंभकरनहिं बिदारिडारौं मारौं मेघनादै आजु यों बल अनंत हौं। कहै पदमाकर त्रिकूट हू को ढाहि डारौं डारत करेई जातुधानन को अंत हौं॥ अच्छहि निरच्छ कपि रुच्छ ह्वै उचारौं इमि तो से तिच्छ तुच्छन को कछुवै न गन्त हौं। जारि डारौं लंकहि उजारि डारौं उपवन फारि डारौं रावण को तौ मैं हनुमन्त हौं॥

५—लोक तिहुँ जारौं सातो सागर सुखाय डारौं गिरिन ढहाय डारौं भूमि उलटाऊँ मैं। रंच मे बिदारि डारौं दसो दिगपालन को खगन समेत ससि सूरहिं गिराऊँ मैं॥ नभ ते पताल लेके कितहूं कहूं जो नेक 'रसिक बिहारी' प्राण प्यारी सुधि पाऊँ मैं। जानको न लाऊँ तौ पै छत्री न कहाऊँ राम नाम पलटाऊँ धनुबान न उठाऊँ मैं॥

६—कह हनुमंत जोरि जुग हाथा। लखन सोच जनि कीजै नाथा।
कहौ चंद्रमहिं पट इव गारी। अबही देहुं अमी मुख डारी॥

कहौ बिबुध-बैदहि गहि आनौं। मीचु मारि सब के दुख भानौं॥
कहौ फोरि नभ रबिहिं निकारौं। रिपु तेहिं द्वार राहु बैठारौं॥
कहौ ब्रह्म हरि हर कहँ आनी। अमर अमर बुलवाऊँ बानी॥
कहौ पताल जाय हति नागा। आनौं अमी-कुंड यहि जागा॥
कहौ देहुं निज देहै त्यागी। अबही उठौं लखन घट जागी॥

दो०—जो कछु तुव मन में रुचै सो मोहिं आयसु होय।
नाथ सपथ छिन में करौं प्रभु प्रताप बल सोय॥

(विश्राम सागर)

(१०१)—भाविक

दो०—जहाँ भूत भावी अरथ बरनत कबि परतच्छ।
अलंकार भाविक कहत ताको सब मति स्वच्छ॥

१—(भूतार्थ प्रत्यक्ष वर्णन)

दो०—जाकी छबि को देखिकै होत मनहिं बिसराम।
चित्रकूट में जानिये अबहूं राजत राम॥

(कवित्त)

२—अजौं भूतनाथ मुण्डमाल लेत हरषत भूतन अहार लेत अजहूं उछाह है। भूषन भनत अजौं काटे करवालन के कारे कुंजरन परी कठिन कराह है। सिंह सिवराज सलहेरि के समीप ऐसो कीन्हो कतलाम दिल्ली दल को सिपाह है। नदी रनमंडल रुहेलन रुधिर अजौं अजौं रबिमंडल रुहेलन की राह है॥

३—आवत हौं जमुना तट को नहिं जानि परै बिछुरे गिरधारी। जानति हौं सखि आवन चाहत कुंजन ते कढ़ि कुंजबिहारी॥

४--दो०--जहाँ २ ठाढ़ो लखो स्याम सुभग सिरमौर ।
उनहूं बिन छिन गहि रहत दृगन अजौं वह ठौर ॥
५--दो०--दलन दबाई ही जु तुम हनत दसानन गोत ।
लखहु राम वह आज लौं धक २ धरती होत ॥

सूचना—इसे अंगरेजी में ऐतिहासिक वर्तमान (Historic Present) कहते हैं। अजौं, अजहुं, अब भी इसके वाचक जान पड़ते हैं।

—२(भावी अर्थ प्रत्यक्ष वर्णन)

१-दो०--जनि चलाइये चलन की चरचा स्याम सुजान ।
मैं देखति हौं वाहि यह बात सुनत बिन प्रान ॥
२-गहन बिपिन गिरि गैल के जे गढ़ दृढ़ भरपूर ।
राम रावरो दल चलत देखत हौं चकचूर ॥
३-कही जाय क्यौं अलि भली छबि प्रति अंग अनूप ।
भावी भूषण भार हू लसत अबहि तव रूप ॥

(१०२)—उदात्त

दो०-संपति की अत्युक्ति को कोविद कहत 'उदात' ।
जहँ उपलक्षन बड़न को ताहू की यह बात ॥

१-(संपति की अत्युक्ति)

१—जों संपदा नीच गृह सोहा । सो बिलोकि सुरनायक मोहा ।
जेहि तिरहुति तेहि समै निहारी । तेहि लघु लगेभुवनदसचारी॥
२-जगत-जनक बरनै कहा जनक नगर को ठाट ।
सहल महल हीरन बने हाट बाट करहाट ॥
३-सुवरनपुर मनिमय महल रही महा छबि फैलि ।
चौकी चिंतामनिन की बैठी कंचन-बेलि ॥

४—नन्द द्वार जे माँगन आये। बहुरो फिर याचक न कहाये।
लक्ष्मी सी जहँ मालिन बोलै। वंदनमाला बांधत डोलै॥
द्वारबुहारतफिरत अष्टसिधि। कौरन सथिया चीतत नवनिधि॥

२-(महाजनों की उपलक्षणता*)

दो०-भूषित संभु स्वयंभु सिर जिनके पद की धूर।
हठ करि पाँव भँवावती तिन सों तिय मगरूर॥
२- यह अरण्य वह है जहाँ मानि पिता के बैन।
बसत राम एकहि कियो हनन निसाचर सैन॥
३—खरदूषन त्रिसिरा सिरन तजि दूषण जेहि ठौर।
रघुकुल भूषन जे कस्यो हर भूषन निज जोर॥
४—या पूना में मति टिको दीन्हीं शिवा सजाय।

(१०३)—अत्युक्ति†

दो० -योग्य व्यक्ति की योग्यता अति करि बरनी जाय।
भूषन सो अत्युक्ति है समुझैं जे मतिराय॥
सुन्दरता अरु सूरता अरु उदारता भाव।
या भूषन में कहत ही उर उपजै अति चाव॥

(सुन्दरता)

दो० -भूषन भार संभारिहै क्यौं वह तन सुकुमार।
सूधे पाँय न धर परत महि सोभा के भार॥

---

* संसर्ग जन्य बड़ाई अर्थात् बड़ों के सम्बन्ध से बड़ाई की प्राप्ति।

† इस अंलकार को अँगरेजी में 'एग्ज़ैजरेशन' (Exageration) और फारसी तथा उर्दू में 'मुबालिगा' कहते हैं।

पुनः—सुमनमयी महि में करै जब राधिका बिहार।
तब सखियाँ संगही फिरै हाथ लिये कचभार॥

(शूरता)

१—जासु त्रास डर कहँ डर होई।

२—जा दिन चढ़त दल साजि अवधूतसिंह ता दिन दिगंत लौं दुवन दाटियतु है। प्रलै कैसे धाराधर धमक नगारा धूरिधारा ते समुद्रन की धारा पाटियतु है। भूबन भनत भुवगोल कोल हहरत कहरत दिग्गज मगज फाटियतु है। कीच से कचर जात शेष के अशेष फन कमठ की पीठि पै पिठी सी बाँटियतु है।

छंद—कह दास तुलसी जबहि प्रभु सरचाप कर फेरन लगे।
ब्रह्मांड दिग्गज कमठ अहि महि सिंधु भूधर डगमगे॥

दो०-इते उच्च सैलन चढ़े तुव डर अरि सकलत्र।
तोरत कंपित करन सों मुकता समुझि नछत्र॥

(उदारता)

१-दो०बारिद लौं बसु बरसि कै कबिकुल किये कुबेर।
निकट जो होतो मेरु तो देत न होती देर॥

२—जाचक तेरे दान ते भये कल्पतरु भूप॥

३-मैं हौं अनाथ अनाथन में तजि तेरोइ नाम न दूजो सहायक।
मंगन तेरे के मंगन ते कल्पद्रुम आजु है मांगिबेलायक॥

४—संपति सुमेर की कुबेर की जो पावै ताहि तुरत लुटावत बिलंब उर धार ना। कहै पदमाकर सुहेम हय हाथिन के हलके हजारन के बितर बिचारै ना। गजगंजबकस महीप रघुनाथ राव याहि गज धोखे कहूँ काहू देइ डारै ना। याही डर गिरिजा गजानन को गोइ रही गिरि ते गरे तें निज गोद तें उतारै ना॥

५-दो०-गनत न कछु पारस पदुम चिंतामनि के ताहिं।
निदरत मेरु कुबेर को तुव जाचक जग माहिं॥

सूचना-केवल सुन्दरता, शूरता और उदारता ही नहीं, वरन् और वस्तुओंमें भी अत्युक्ति हो सकती है। यथाः—

(प्रेमात्युक्ति)

कागद पर लिखत न बनत कहत सँदेस लजात।
कहिहै सब तेरो हियो मेरे हिय की बात॥

(विरहात्युक्ति)

गोपिन के अँसुवन भरी सदा असोस अपार।
डगर डगर नै ह्वै रही बगर बगर के बार॥

इसी प्रकार और भी समझ लो

अत्युक्ति सब वस्तुओं की हो सकती है, परन्तु सुन्दरता, शूरता और उदारता की अत्युक्ति अत्यन्त आनंददायक होती है इसी से परिभाषा में केवल इन्हीं के नाम गनाये गने हैं।

(१०४)—निरुक्ति

दोहा—नामन को निज बुद्धिबल कहिये अर्थ बनाय।
ताको कहत निरुक्ति हैं भूषण जे कबिराय॥

विवरण—जहाँ किसी नाम का कोई कल्पित अर्थ किया जाता है उसे निरुक्ति कहते हैं। जैसेः—

दोहा—कविगन को दारिद द्विरद याही दल्यो अमान।
याते श्री सिवराज को सरजा कहत जहान॥

२—हर्यो रूप इन मदन को याते भो सिव नाम।
लियो बिरद सरजा सबल अरि गज दलि संग्राम॥

३–छीनी छबि मृग मीन की कहौ कहाँ की रीति।
नामहिं में नहिं नीति का करैं नयन ये नीति ॥
४–बिरही नर नारीन को यह रितु चाय चबाय।
'दास' कहैं याको सरद याही अर्थ सुभाय ॥
५–रखत न हित कहुँ काहु सों बनबन करत बिहार।
यहै समुझि विधि ने कस्यो मोहन नाम तुम्हार ॥
६ तनु बिचित्र कायर बचन अहि अहार मन घोर।
तुलसी हरि भय पच्छधर ताते कह सब मोर ॥

(१०५)–प्रतिषेध

दोहा-जहाँ जु बस्तु प्रसिद्ध को प्रगटहिं करै निषेध।
कबि कोबिद तासों कहत अलंकार प्रतिषेध ॥

(यथा)

१–जीत्यो जाहि बिरोध करि सो बिराध मैं नाहिं।
मैं हौं रावण राम तुम का समुझ्यौ मन माहिं ॥
२–बेगि चलौ रसखान बलाय ल्यौं क्यौं अभिमान ते भौंह मरोरत
प्यारे पुरंदर होय न प्यारी अवै पल आधिक में ब्रज बोरत
३–छुटी न गाँठि जु राम सों तियन कह्यौ तेहि ठाहिं।
सिय कंकन को छोरिबो धनुष तोरिबो नाहिं ॥
४–निपटहि द्विज करि जानेसि मोहीं। मैं जस विप्र सुनावहुँ तोहीं।
५–जीतेहु जे भट संगर माहीं। सुनु तापस मैं तिन सम नाहीं ॥
६–अंगद कह दसबदन सों यह न चोरिबो नारि।
नर बानर सों राम सँग प्रान हरन है रारि ॥

सूचना–शुद्धापन्हुति, पर्य्यस्तापन्हुति और प्रतिषेध में भेद यह है कि:–

१–शुद्धापन्हुति में सत्य वस्तु को छिपाकर उसके स्थान में उसी के समान किसी दूसरी वस्तु की कल्पना की जाती है।

२–पर्य्यस्तापन्हुति में एक वस्तु का गुण किसी दूसरी वस्तु में आरोपित किया जाता है।

३–प्रतिषेध में प्रसिद्ध वस्तु का निषेध होकर मनमानी कल्पना की जाती है।

(१०६)-विधि

दो०-जहाँ सिद्ध ऊ अर्थ को करिये बहुरि बिधान।
अलंकार विधि ताहि सों कहत सबै मतिमान॥

(यथा)

१–विश्वभरन पोषन करु जोई। ताकर नाम भरत अस होई।
२–जाके सुमिरन ते रिपु नासा। नाम सत्रुहन वेद प्रकासा॥
३–सेवक सो जो करै सेवकाई।
४–दीनदयाल हरौ हमरो दुख तौ तोहि दीनदयाल सराहौं।
५–कोकिल है कोकिल तबै रितु में करिहै टेर।
६–मुरली मुरली होति है मोहन के मुख लागि॥

इन उदाहरणों में प्रत्येक नाम स्वयं सिद्ध है परंतु कवि ने पुनः उसका विधान किया है। 'निरुक्ति' में मनमाना अर्थ कल्पित किया जाता है। 'विधि' में सिद्धार्थ ही पुनः कहा जाता है।

(१०७)–प्रमाण

दो० कहुँ प्रतच्छ[१] अनुमान[२] कहुँ, कहुँ उपमान[३] दिखाय।
कहूं षड़लकी बात[४] लै, आत्मतुष्टि[५] कहुँ पाय॥
अनुपलब्धि[६] संभव[७] कहूं, कहुँ लहि अर्थापत्ति[८]।
कबि प्रमान भूषण कहैं बात जो बरनैं सत्ति॥

विवरण–'सत्य कथन' को 'प्रमाण' कहते हैं। इसके आठ भेद हैं। यथाः—

१-(प्रत्यक्षप्रमाण)

दो०—इन्द्रिय अरु मन ये जहां विषय आपनो पाय।
ज्ञान करैं, प्रत्यक्ष तेहि कहैं सकल कविराय॥

(यथा)

१–छप्पय–सर सर हंस न होत वाजि गजराज न थर थर।
तरु तरु सुफल न होत नारि पतिव्रता न घर घर।
तन तन सुमति न होति मलैगिरि होत न बन बन।
फन फन मणि नहिं होत मुक्तजल होत न घन घन।
रन रन सूर न होत हैं जन जन होत न भक्त हरि।
कवि नरहरि निरख कवित्त कहि सब नर होत न एक सरि।

२-तात जनक तनया यह सोई। धनुषयज्ञ जेहि कारण होई।
पूजन गौरि सखी लै आई। करत प्रकाश फिरति फुलवाई।

३–कुल को कुलीन होय उपकार लीन होय पंडित प्रवीन होय दोष सब खोई है। उदित उदार होय, पूर परिवार होय चाबुक सवार होय वैद बुध जोई है। बलको निधान होय, बोल को प्रमान होय, सब गुन थान होय शील संत सोई है। सूर होय वीर होय सुन्दर शरीर होय लच्छिमी न होय ताहि पूछत न कोई है।

सूचना–इन उदाहरणों में कही हुई बातें सब कोई जानता है कि प्रत्यक्ष सत्य मानी जाती हैं।

२–(अनुमानप्रमाण)

दो०–चिन्हहि लखि अनुमान बल बस्तुहिं लीजै जानि
तहँ अनुमान प्रमाण सब भूषण कहैं बखानि॥

(यथा)

१–नाचि अचानक ही उठे बिन पावस बन मोर ।
जानति हौं नन्दित करी यहि दिसि नन्दकिसोर ॥
२–यह पावस तम सांझ नहिं है दुचितो मति भूल ।
कोक अशोक बिलोकिये रह्यौ कोकनद फूलि ॥
३–धुवाँ देखि सब कोउ करत आगी को अनुमान ।
४–जिन लोखरी मारी नहीं कहा मारिहै शेर ?

३—(उपमानप्रमाण)

दो०–उपमा के सादृश्य ते बिन देखो उपमेय ।
जानिपरै, उपमान सो अलंकार है ज्ञेय ।

(यथा)

१–दो०–सहस घटन में लखि परै ज्यौं एकै रजनीश ।
त्यौं घट घट में 'दास' हैं प्रति बिंबित जगदीश ॥
२–सो रोहिणि जानहु सखे जो हैं शकट समान ।

४–(बड़ों की बात वा शब्द प्रमाण)

दो०--जहाँ शास्त्र अरु बड़न को बचन प्रमान बखान।
सोई शब्द प्रमाण है भाषत सुकवि सुजान ॥

(यथा)

१–छप्पय–मरै सूम सरदार मरै वह कट्टर टट्टू ।
मरै हठीली नारि मरै वह पुरुष निखट्टू ।
ब्राह्मण सो मरि जाय हाथ लै मदिरा प्यावै ।
पूत वही मरि जाय जो कुल में दाग लगावै ।

बेनियाउ राजा मरै नींद घड़ाघड़ सोइये।
बैताल कहै विक्रम सुनो इनके मरे न रोइये।

२-देखु बिचार सार का सांचो कहा निगम निजु गायो।
भजहि न अजहुँ समुझि तुलसी तेहि जेहि महेश मन लायो।

३-सो०-तुम जु हरी पर बाल, ताते हम यहि हाल में।
नाथ बिदित सब काल, जो हन्नति सो हन्यते॥

४-वेद पुराण संत अस गावा। जो जस करै सो तस फल पावा।

५-(आत्मतुष्टि प्रमाण)

दो०-अपने अङ्ग स्वभाव को दृढ़ विश्वास जहाँहिं।
आतमतुष्टि प्रमाण कबि कोबिद कहैं तहाहिं॥

(यथा)

१-मोहि भरोसो रीझिहौ, उझकि झांकि इकबार।
रूप रिझावनहार वह ये नैना रिझवार॥

२-मोहि अतिशय प्रतीत जिय केरी। जेहि सपने परनारि न हेरी

६ (अनुपलब्धि प्रमाण)

दो०-जानि परै नहिं वस्तु कछु अनुपलब्धि है सोय।

बिवरण-जहाँ कोई कारण नहीं मिलता वहां किसी कल्पित कारण को मान लेते हैं, उसे ही अनुपलब्धि प्रमाण कहते हैं।

(यथा) *

वालि बध्यो बलिराज बँध्यो कर शूली के शूल कपालथली है।
काम जरो जरकाल परो बँध सेतु धरो विष हालहली है।

---

* सू०-नीचे कहे हुए छन्द की घटनाओं का जब कोई मुख्य कारण समझ में न आया तब कबि ने कह दिया कि "अदृष्ट बली है", । ऐसे ही प्रमाण को अनुपलब्धि प्रमाण कहते हैं ।

सिंधु मथ्यो कल काली नथ्यो कहि केशवचंद कुचाल चली है।
रामहु की हरी रावण बाम चहूं दिशि एक अदृष्ट बली है।

७-(संभव प्रमाण)

दो०-जहँ संभव है वस्तु को संभव जानो ताहि।

विवरण—जहां किसी बात का होना संभवित हो सकता हो, उसे संभव प्रमाण कहते हैं। (इसमें यह ज़रूरी नहीं है कि वह बात होवे भी अवश्य, केवल उसकी संभावना मात्र से मतलब है)। (संभावना अलंकार देखो) पृष्ठ १८०

(यथा)

१—दो०—सुनी न देखी तुव सरिस हे वृषभानुकुमारि।
जानत हौं कहुँ होयगी बिपुला धरनि बिचारि॥

२—उपजैंगे, ह्वैहैं अजौं हिंदूपति से दानि।
कहिय काल निरअवधि लखि बड़ी बसुमती जानि॥

ठाकुर कहत कछु कठिन न जानो याहि हिम्मत किये ते कहो कहा न सुधरि जाय। चारि जने चारिहू दिसा ते चारो कोन गहि मेरु को हलाय कै उखारै तो उखरि जाय।

८—(अर्थापत्ति प्रमाण)

दो०—जहां अर्थ में अर्थ को और जोग ते थाप।
अर्थापत्ति प्रमाण तहँ कहैं सुकबि सह दाप॥

विवरण—जहां किसी अर्थ को किसी और ही योग से स्थापित किया जाय।

(यथा)

१-दो०-इतो पराक्रम करि गयो जाको दूत निशंक ।
कंत कहो दुस्तर कहा ताहे तोरिबो लंक ॥

२-पिय तेहिते जीतब संग्रामा । जाके दूत केर अस कामा ।

(१०८)--हेतु ❀ (द्विविधि)

(प्रथम)

दो०-कारज कारण संगही जहँ बरणौं इकठौर ।
प्रथम हेतु तासों कहत जिनकी मति सिरमौर ॥

१—भाग जगै लछिराम दुहून में छाये तरंग सुप्रीति भली के
रामसुरूप निहारत ही उर मोद मढ़े मिथिलेश लली के

२—उयो अरुण अवलोकहु ताता । पंकज कोक लोक सुखदाता ।

३—जासु विलोकि अलौकिक शोभा । सहजपुनीत मोर मनछोभा

४-अरुणोदय सकुचे कुमुद उड़गण ज्योति मलीन

५—उयो भानु बिनश्रम तमनासा । दुरे नखत जग तेजप्रकासा।

६- आपुहिं सुनि खद्योतसम रामहिं भानु समान ।
परुष बचन सुनि काढि असि बोला अतिखिसियान।

(दूसरा)

दो०-कारण कारज ये जबै लसत एकता पाय ।
हेतु अलंकृत दूसरो ताहि कहैं कबिराय ॥

विबरण—जहां कारण ही को कार्यरूप बर्णन करते हैं, वह दूसरा 'हेतु' है ।

❀इस 'हेतु' अलंकार में 'काव्यलिंग' के विरुद्ध केवल उत्पादक हेतु का ही वर्णन होता है ।

(यथा)

१–मेरी रिद्धि समृद्धि है तुव दाया रघुनाथ ।
२–परम पदारथ चारहू श्री राधागोविंद ।
३–कोऊ कोरिक संग्रहौ कोऊ लाख हजार ।
मो संपति यदुपति सदा विपति बिदारनहार ।
४-मोहिं परमपद मुक्ति सब तो पदरज घनश्याम।
तीन लोक को जीतिबो, मोहि बसिबो ब्रजग्राम।

—:*:—

तीसरा पटल

[उभयालंकार]

दो०–भूषण इक तें अधिक जहँ सो उभयालंकार ।
संसृष्टि रु संकर तहां उभय भेद निरधार ॥
दो०–तिल तंदुल के न्याय सों है संसृष्टि बखान
नीर छीर के न्याय सों संकर कहत सुजान ॥

बिवरण–जहां एक से अधिक अलंकार आजाते हैं, ऐसे मिश्रण को उभयालंकार कहते हैं। इस मिश्रण के दो भेद हैं–(१) संसृष्टि (२) संकर ।

१-संसृष्टि

दो०- जुदे जुदे भासैं सकल अपने अपने ठाम ।
तिल तंदुल की रीति करि, सो संसृष्टि सुनाम ॥

बिवरण–जैसे तिल और चावल मिला देने से भी अपने अपने रंग से प्रत्यक्ष ही अलग अलग देख पड़ते हैं, इसी प्रकार

मिले हुए अलंकार यदि मिले हुए होने पर भी अपनी सिद्धि के लिये एक दूसरे की अपेक्षा न रखते हों तो वह मिश्रण संसृष्टि कहलावैगा। इसके तीन भेद हो सकते हैं:—(१)शब्द + शब्द (२)शब्द + अर्थ (३) अर्थ + अर्थ।

१--(शब्दालंकार+शब्दालंकार)

शब्दालंकार के वर्णन में 'तुरमुती तहखाने' वाला कवित्त देखिये। उसमें, छेकानुप्रास, लाटानुप्रास, वृत्यानुप्रास सब पृथक् २ दिखाई पड़ते हैं।

२-(शब्दालंकार+अर्थालंकार)

लसत मंजु मुनि मंडली मध्य सीय रघुनंद।
ज्ञान सभा जनु तनु धरे भक्ति सच्चिदानंद॥

इसमें पूर्वार्द्ध में 'म' अक्षर का अनुप्रास है। 'जनु' शब्द से उत्प्रेक्षा प्रगट है। मुनि मंडली, सीय, रघुनंद कहके पुनः क्रमसे ज्ञानसभा, भक्ति और सच्चिदानंद क्रम से कहकर क्रमालंकार स्पष्ट किया गया है।

दो०—दंड यतिन कर भेद जहँ नर्तक नृत्यसमाज।
जीतहु मनहिं सुनिय अस रामचंद्र के राज॥

यहां नर्तक और नृत्य में 'न' का और रामचंद्र और राज में 'र' का अनुप्रास है और कुल दोहासे परिसंख्या अलंकारसिद्ध है।

३—(अर्थालंकार+अर्थालंकार)

दो० ससि सो उज्वलमुख लसै खंजन हैं मनु नैन।
अधर नासिका बिंब शुक, मधुर सुधा से बैन॥

यहां प्रथम चरण में पूर्णोपमा, दूसरे में उत्प्रेक्षा, तीसरे में क्रम, और चौथे में पुनः पूर्णोपमा, प्रत्यक्ष और अलग अलग स्पष्ट देखे जाते हैं। पुनः—

नील सरोरुह श्याम, तरुण अरुण बारिज नयन ।
करो सो मम उर धाम, सदा क्षीर-सागर-सयन ॥

यहां प्रथम दो चरणों में लुप्तोपमा, और चौथे चरण में पर्यायोक्ति अलंकार है ॥

८—संकर

दो०-पय पानी की रीति तें होयँ परस्पर लीन ।
ताकहँ संकर नाम दै भाषत सुकबि प्रवीन ॥

विवरण—दूध पानी की तरह से मिले हुये (पृथक न होने योग्य) अलंकार हों उस मिश्रण को 'संकर' कहते हैं । इसके चार भेद होते हैं-(१) अंगांगी भाव, २) समप्राधान्य (३) सन्देह और (४) एक बाचकानुप्रवेश वा 'एक पद संकर'

१—अंगांगी भाव

दो०-बीज बृक्ष के न्याय करि इक इक को अँग होय ।
सो अंगांगी भाव है कबि गुलाब मति जोय ॥

विवरण—जहां बीज वृक्ष के न्याय से मिले हुये अलंकार हों उसे 'अंगांगीभाव संकर' कहते हैं अर्थात् जहां एक के बिना दूसरा सिद्ध ही न हो सके जैसे बिना बीज के वृक्ष और बिना वृक्ष के बीज नहीं हो सकता । यथाः—

दो०-हलत पवन ते तरुन तर दीखत छाँह अचूक ।
शशि-हरि ने तम-गज हनो मानो ताके टूक ॥

(पवन से हिलते हुये वृक्षों के नीचे जो छाया देख पड़ती है वह मानो शशिसिंह के मारे हुए तमगज के टुकड़े हैं)

यहां 'मानो' शब्द से उत्प्रेक्षालंकार मुख्य है, सो अंगी है और शशिसिंह तथा तमगज 'अभेद रूपक' उसके अंग हैं ।

दो० तुव अरितियगण बन भजत लूटीं सब बटमार।
अधर बिंब दुति गुंज गुनि हरे न मुकुता हार॥

(तेरे शत्रुओं की स्त्रियों को वन में भागते समय लुटेरे भीलों ने लूट लिया, परन्तु ओठों की दुति से लाल हुए मोतियों को गुंजा समझ कर मोतियों के हार न लूटे)

यहां ओठों के संग से मोती गुंजा से होगये यह तद्गुण अलंकार है, मोतियों के हारको गुञ्जा का हार समझकर लुटेरों ने नहीं लूटा, इसमें भ्रांति अलंकार है। यहां तद्गुण के ज़ोर से भ्रांति की सिद्धि है, और भ्रांति के जोर से तद्गुण की सबलता प्रगट हुई। अतः अंगांगी भाव संकर है।

पिहित अलंकार के वर्णन में 'राम जानकी' वाला सवैया देखो। वहां तीन चरणों तक 'पिहित' अंग भाव है, तब चौथे चरण में 'अप्रस्तुतप्रशंसा' अंगी भाव है।

पुनः

साधु चरित शुभ सरिस पासू। निरसविशद गुणमय फलजासू।
जो सहि दुख पर छिद्र दुरावा। बंदनीय जेहि जग जस पावा॥

इसमें श्लेषालंकार उपमाका अंग है। साधुचरित और कपास सरिस हैं यह उपमा है। उसके फल निरस, बिशद और गुणमय हैं। इन तीन विशेष गुणों के शिलष्ट अर्थ साधुचरित और कपासफल दोनों पर लगते हैं तब उपमा सिद्ध होती है। छिद्र शब्द भी शिलष्टहै।

२-(समप्राधान्य)

दो०—दिन दिनपति के न्याय करि सँग प्रगटै सँग भासु।
नाम सु समप्राधान्य है कबि गुलाब कह तासु॥

बिबरण—दिन और सूर्य की तरह साथ ही प्रगटैं और साथ ही लख पड़ैं वह समप्राधान्य संकर है। यथाः—

दो०—रघुपति कीरति कामिनी क्यौं कह तुलसी दासु।
सरद प्रकास आकास छबि चारु चिबुक तिलजासु॥

इसमें क, स, और च के अनुप्रास, प्रतीत और रूपक दोहा पढ़ते ही भासित हो जाते हैं—

पुनः—

सेये सीता राम नहिं भजे न शंकर गौरि।
जनम गँवायो वादि ही परत पराई पौंरि॥

इसमें स, र और प के अनुप्रास और दृष्टान्त एक साथ ही भासते हैं।

३–(संदेह)

एक मिटाये दूजो भासै। दूजो त्यागे प्रथम प्रकासै।
बोध न होय कौन को लीजै। तहँ संकर संदेह भनींजै॥

बिवरण—जहां पर दो वा अधिक अलंकार लख पड़ें, पर निश्चय न हो सके कि किसका ग्रहण करें वा किसका त्याग करें। एक के लिये न तो कोई साधक प्रमाण हो, और न दूसरे के लिये निषेध वा बाधक वाक्य हो। ऐसे मिश्रण को 'सन्देह संकर' कहते हैं। यथा:—

सुनि मृदु वचन मनोहर पियके। लोचन नलिन भरे जल सियके॥

इसमें 'लोचन नलिन' में उपमा मानें वा रूपक मानें ऐसा संदेह होता है।

मनोहर पिय के मृदुवचनों से दुःख होना–भले उद्योग से बुरा फल होना–विषम अलंकार है, अथवा 'लोचन नलिन भरे जल सिय के, इस कार्य के मिस सीताजी के दुःख रूपी कारण का कथन होने से अप्रस्तुत प्रशंसा है। न तो किसी के खंडन की कोई सामग्री इसमें है और न मंडन ही की। अतः निश्चय नहीं कह सकते कि कौन अलंकार मानना चाहिये।

दो०-जैसे निर्मल कांति अरु रतन भरो गंभीर।
तैसे विधि या जलधि को क्यौं न कियो मधुनीर॥

यहां समुद्ररूप प्रस्तुत में अप्रस्तुत की प्रतीति होने से क्या यह, समासोक्ति है, वा समुद्ररूप अप्रस्तुत द्वारा उसके समान गुणवाले प्रस्तुत किसी धनी पुरुष की प्रशंसा प्रतीत होने से क्या यह 'अप्रस्तुत प्रशंसा' है, ऐसा सन्देह होने से यह 'सन्देह संकर' है।

दो० नयनानँददायी लसत यह शशि बिम्ब प्रकाश।
अजहुँ न तम बिनस्यो कहा? जेहि रोकी सब आश॥

इसमें रूपकातिशयोक्ति, रूपक, दीपक, तुल्ययोग्यता और समासोक्ति इत्यादि कई एक अलंकारों का संदेह हो सकता है॥

४-(एक वाचकानुप्रवेश)

दो०-न्याय नृसिंहाकार करि एकहि पद के माहिं।
युग भूषण, इक वाचकानुप्रवेश कहि ताहिं॥

बिवरण—नृसिंहाकार न्याय से (एकही देह में मनुष्य और सिंह की आकृतिवत्) जहां एक ही पद में शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों हों वहां एक वाचकानुप्रवेश (वा संक्षेप से 'एक पद संकर') कहा जाता है। जैसेः—

दो०—हे हरि दीन दयाल हौ मैं मांगौं सिर नाय।
तुव पद-पंकज आसरे मन-मधुकर लगिजाय॥

इसमें 'पदपंकज' में तथा 'मन मधुकर' में शब्दालंकार अनुप्रास और अर्थालंकार रूपक का संकर है।

पुनः—सवैया।

केतकि धूरि धरे सिर ऊपर गुंजत मंजु सु कुंजन में।
दान झरै मधुनीर, समीर जँजीर सु आवत है छन में॥

मत्त छुटे नव पंकज थान ते दर्प अखंड करे मन में।
तोरि के सौरभ सांकर को यह भृङ्ग मतंग फिरै बन में॥

यहां 'भृङ्ग मतंग' इस एक ही पद में रूपक और वृत्य-नुप्रास का संकर है।

पुनः-सोइ जल अनल अनिलसंघाता। होय जलद जगजीवनदाता

यहां जलद, जग, जीवनदाता में अनुप्रास भी है और जीवन शब्द अर्थश्लेष होने से अर्थालंकार भी है क्योंकि जीवन का अर्थ है 'पानी' और 'प्राण'।

सूचना—थोड़ा सा नमूने के तौर पर लिख दिया गया। सब अलंकारों के सब प्रकार के 'संकरों' के उदाहरण एकत्र दिखलाना असंभव ही है।

३–[रसवत् अलंकार]

यद्यपि कितने ही कवि सात प्रकार के 'रसवत् अलंकार भी मानते हैं, परन्तु हम उन्हें अलंकार नहीं मानते। इसी से उन्हें हमने नहीं लिखा।

[चौथा पटल]

दोषकोष

पाठकों को जानना चाहिये कि संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं जिसमें गुणही गुण हों और दोष न हो। इसी सिद्धान्त के अनुसार इन अलंकारों में भी कुछ दोष हुआ करते हैं। उन्हें भी समझ लेना चाहिये।

(१)–शब्दालंकारों के दोष

शब्दालंकारों में सर्वप्रधान 'अनुप्रास' और "यमक" हैं, इसलिये इनके ही दोष खूब समझ लेना चाहिये।

क—(अनुप्रास के दोष)

अनुप्रास अलंकार के मुख्य तीन दोष हैं:-(१) प्रसिद्धाभाव (२) वैफल्य और (३) वृत्यविरोध।

१—प्रसिद्धाभाव

दो०-अप्रमाण बातैं कहै अनुप्रास के हेत।
दोष प्रसिद्धाभाव तेहि भाषैं सुकवि सचेत॥

(यथा)

रविजा कहे ते रण जीतै जोम जोरि जोरि, यमुना कहे ते यमुनाके होत हेर बिन। भानु होति कीरति प्रभानुके परमपुंज भानुतनया के कहे ते ही फेर फेर बिन। ग्वाल कवि मंजु मारतंड-नंदिनी के कहे, महिमा महो में होत दीनन के टेर बिन। दरि जात दारिद दिनेशतनया के कहे, कहत कलिन्दी के कन्हैया होत देर बिन।

इसमें श्री यमुना जी की महिमा का वर्णन है। यमुना की महिमा से यद्यपि सब कुछ हो सकता है, तो भी 'रविजा' कहने से 'रणजीतै', 'यमुना' कहने से 'यम' के नाके बंद हो जायँ, 'भानुतनया' कहने से 'भानु हो जाय, 'मारतण्ड-नन्दिनी कहने से' महिमा बढ़ै, दिनेशतनया, कहने से 'दारिद दर जाय' और कलिन्दी, कहने से 'कन्हैया हो जाय, इन बातों का कोई प्रमाण नहीं है। कबि ने केवल अनुप्रास के हेत ही ऐसा कहा है। अतः यह प्रसिद्धाभाव दोष है।

२—वैफल्य

चमत्कार का होय अभाव। तेहि वैफल्य कहैं कबिराव॥

(यथा)

का 'सरदार' कहौं तोहि सों सरदार सबै सरदार सचा हैं।
सासन सासन सासन में हम सासन सासन सासन चाहैं।
काननदी ननदी ननदी ननदी ननदी जु न दीन दचा हैं।
का बलमा बलमा बलमा बलमा बलमा बलमा बलमा हैं।

यहां वाच्यार्थ में कोई चमत्कार नहीं, केवल शब्दाडम्बर मात्र है। अतः अनुप्रास व्यर्थ वा विफल है। ऐसे विफल अनुप्रास 'ग्वाल कवि' और 'पजनेश' कवि की कविता में बहुधा पाये जाते हैं।

३—वृत्ति-विरोध *

उपनागरिकादि वृत्तियों के नियमविरुद्ध वर्णविन्यास को वृत्तिविरोध दोष कहते हैं।

(यथा)

१-दो०-पञ्चबटी गुणगण जटी ठटनि ठटी नटरास।
अघट घटी दुख सुख पटी कुटी करो तहँ वास॥

२-सवैया—एक घटी न घटी सिय के दुख राम रहे मुनिके निकटी। घट के सुत सो हित नारि जटी मनु धूरजटी नहिं काम छटी। दुपटी फटिजात जहां तमकी प्रगटी घटमें गुरुज्ञान गटी। कहिये कहुं मुक्ति हटी वरटी जहँ पर्णकुटी रघुनाथ ठटी।

३-दो०-तौ लगि या मन सदन महँ हरि आवैं केहि बाट।
निपट विकट जौ लौं जुटे खुलैं न कपट कपाट॥

---

*सूचना—'पजनेश' कवि की कविता में यह दोष प्रायः पाया जाता है। इस कवि ने श्रृङ्गार वर्णन में परुषा वृत्ति टवर्गी अक्षरों का बहुतायत से प्रयोग कियां है।

४-सब जाति फटी दुख की दुपटी कपटी न रहैं जहँ एक घटी।
निघटी रुचि मीचु घटी हु घटी जग जीव जतीन की छूटी तटी।
अघ ओघ की बेरी कटी विकटी निकटी प्रकटी गुरु ज्ञान गटी।
चहुँ ओरन नाचति मुक्तिनटी गुण धूरजटी बन पंचबटी॥

यह शांत रस संबंधिनी कविता 'कोमला' वृत्ति में होनी चाहिये थी, सो 'परुषा' वृत्ति में की गई है। 'राम' कवि कृत हनुमन्नाटक में ऐसी कविता बहुत है।

(ख)—यमक का दोष

यमकालंकार के नियमानुसार यमक किसी छंद के एक चरण वा दो चरणों में वा चारों चरणों में होना चाहिये। इसके विरुद्ध यदि तीन चरणों में यमक हो तो 'अप्रयुक्त' दोष कहलाता है। जैसेः—

दो० तोपर वारों उरबसी सुनु राधिके सुजान।
तू मोहन के उरबसी, ह्वै उरबसी समान॥

यहां 'उरबसी' शब्द का यमक केवल तीन चरणों में है। अतः अप्रयुक्त दोष है।

दो०-वाणीरूप अनूप बर, बरण बाम ते बाम।
कहैं वाम विधि बिधिकरी, बामदेव धनु बाम॥

यहां बाम शब्द का यमक भी तीन ही चरणों में है। अतः अप्रयुक्त दोष है।

(२)—अर्थालंकारों के दोष

१—(उपमा के दोष)

अर्थालंकारों में मुख्य 'उपमा' अलंकार है। अतः इसके दोषों को भली भांति समझ लेना चाहिये। उपमालंकार, में मुख्यतः ९ दोष माने गये हैं। यथाः—

१-(न्यूनता)

जहां उपमेय से उपमान की न्यूनता दर्शित हो, उसे न्यूनता दोष कहते हैं। इसके तीन भेद हैं-(क) जातिगत (ख) प्रमाणगत (ग) धर्मगत।

क—(जातिगत न्यूनता का उदाहरण)

दो०-चतुर सखिन के मृदु वचन बासर जाय बिताय।
पै निशि में चंडाल लौं मारत यह शशि आय॥

यहां चन्द्रमा का उपमान चंडाल कहा गया है। यह जाति गत न्यूनता दोष है।

ख—(प्रमाणगत न्यूनता का उदाहरण)

'सोहत अग्निफुलिंग लौं यह रविरथ नभ थान।

यहां सूर्य के रथ को अग्नि की चिनगारी की उपमा दी गई है। यह बड़ी वस्तु की छोटी वस्तु से उपमा है। इसी को प्रमाणगत न्यूनता कहते हैं।

ग—(धर्मगत न्यूनता का उदाहरण)

दो०-कृष्ण अजिन पट लसत मुनि शुचि मौंजी युत गात
नील मेघ के निकट जिमि नभ दिनमणि बिलसात॥

यहां मुनि उपमेय के काली मृगछालारूप धर्म का तो सूर्य उपमान के नीलमेघ की निकटता रूप धर्म कहा गया है, परन्तु मौंजी के समान दूसरा धर्म विजली और भी कहना चाहिये था, सो नहीं कहा गया। यही धर्मगत न्यूनता दोष है।

२—(अधिकता)

जहां उपमेय से उपमान की अधिकता प्रदर्शित हो, वहां

'अधिकता' नामक दोष होता है। न्यूनता की तरह अधिकता भी तीन भांति की है:—

क—(जातिगत अधिकता)

दो० कमलासन आसीन यह चक्रवाक विलसाहि।

यहां चक्रवाक की उपमा ब्रह्मा से दी गई है। यह अधिकता दोष है। नीच पक्षी की उपमा अति उच्च देवता को ठहराना केवल हास्यास्पद है।

ख—(प्रमाणगत अधिकता)

जहाँ किसी छोटे उपमेय की उपमा अत्यन्त बड़े और भद्दे उपमान से दी जाय। जैसे नख की उपमा खाँड़े से वा दाँतकी उपमा वज्रशिला से।

ग—(धर्मगत अधिकता)

दो०—लसत पीतपट चाप कर मनहर बपु घनश्याम।
तड़ित इन्द्रधनु शशि सहित ज्यौं निशि में घनश्याम

यहां उपमेय श्रीकृष्ण के पीताम्बर तथा धनुष के स्थानपर उप. [illegible]मान नीलघन बिजली तथा इन्द्रधनुष सहित कहा गया सो ठी[illegible]क है, किन्तु उपमान चन्द्र सहित कहा गया है इसके जोड़ की [illegible] वस्तु (शंख) उधर कृष्ण के पास कथन नहीं की गई, अतः [illegible] उपमान में अधिकता है।

३—(लिंगभेद) और ४—(बचन भेद)

दो०—कहे जायँ कहु कौन विधि या नृपके गुणकूल।
मधुरे बच हैं दाख लौं चरित चांदनी तूल॥

यहां उपमेय 'बच' एक बचन पुल्लिंग और क्रिया बहुबचन है

१६

दाख' उपमान स्त्रीलिंग और एकवचन है। 'चरित' पुलिंग और बहुवचन है, उपमान चांदनी एकवचन और स्त्रीलिंग है। यह अनुचित है। अतः दोषरूप है।

पुनः—दैत समान लगै अति दारुण चैत की चांदनी रामै सिया बिन।

पुन.—दो० मनमोहन तन घनसघन रमणि राधिकामोर।
श्रीराधामुख चन्द को गोकुलचन्द चकोर॥

यहां 'राधिका' स्त्रीलिंग के लिये 'मोर' पुल्लिंग की उपमा अनुचित है।

५ (कालभेद)

उपमेय के साथ और काल की क्रिया लाना, उपमान के साथ और काल की। यथाः—

दो०-रण में इमि शोभित भये राम बाण चहुँ ओर।
जिमि निदाघ मध्यान में नभ रविकर खरघोर॥

इसमें रामबाण इमि शोभित भये (भूतकालिक क्रिया) और जिमि रविकर मध्यान में होते हैं (वर्त्तमानकालिक क्रिया का अध्याहार) अनुचित होने से दोषरूप है।

६—(पुरुषभेद)

जहां उपमेय को और पुरुष में और उपमान के पुरुष में कहैं। यथाः—

दो०-राजत हौ प्यारी! रुचिर पट कुसुंभ तनुधारि।
लाल सुबाल प्रबालतरु-प्रभव लता अनुहारि॥

यहां 'प्यारी' उपमेय 'मध्यपुरुष' में और 'लता' उपमान 'अन्यपुरुष' में है। यह अनुचित होने से दोषरूप है।

७–(विधिभेद)

जहां उपमेय और उपमान की विधि न मिले। जैसे:
नृप तव कीरति सम सदा दिनकर करै प्रकाश।

सूर्य स्वयं ही सदा प्रकाशमान है। कीर्ति सम प्रकाशित हो। ऐसा कथन नितान्त असंगत है।

८–(अप्रसिद्धि)

ऐसीउपमा देना जैसी लोक में प्रसिद्धि न हो। जैसे:-
"काव्य चंद्र रचना करत अर्थ किरण युत चारु"।

काव्य को चन्द्र और अर्थको किरण कहना अप्रसिद्धि दोष है। इसे 'असादृश्य' भी कहते हैं।

९–(असम्भव)

दो०–धनु मंडल सों परत है दीपत शर खर धार।
ज्यौं रवि के परिबेष तें परत ज्वलित जल धार॥

यहां धनुष से छूटे हुए दीप्तिमान बाणों को सूर्यमण्डल से गिरती हुई ज्वलित जलधाराओं की उपमा दी जाने से असंभव दोष है, क्योंकि ऐसा सम्भव ही नहीं है।

२–(उत्प्रेक्षा के दोष)

१–'उत्प्रेक्षा' में मनु, जनु, मानो, जानो, ध्रुव, खलु, इव, शब्दों से ही सम्भावना स्फुरित हो सकती है, 'यथा, ज्यौं, शब्दों से नहीं। अतः उत्प्रेक्षा में 'ज्यौं, वा 'यथा' वाचक लाना दोष है। इसे 'अवाचकता' दोष कहते हैं।

२–उत्प्रेक्षा के समर्थन को अर्थान्तरन्यास का कथन दूसरा दोष है जिसे 'अनुचितार्थता' दोष कहते हैं।

दो० रच्छत हिमगिरि तमहिं मनु गुफा लीन रबिभीत।
शरणागत छोटेहु पर करत बड़े जन प्रीत ॥

यहां अचेतन 'तम' को सूर्य से भय होना ही संभव नहीं फिर हिमगिरि कृत रक्षा कैसी? तिसपरतुर्रा यह कि अर्थान्तर न्यास से उसी असंभव बात की पुष्टि करना मानो बिना आधार के चित्र खींचना है।

३—(समासोक्ति का दोष)

'समासोक्ति' अलंकार में समानविशेषणों द्वारा ही उपमान विशेषकाप्रकाशनहोता है, उसकेलिये उपमान बाचक पदकहना एक दोष है, जिसे 'पुनरुक्तता' वा अपुष्टार्थता, कहते हैं, जैसेः-

दो०-परस करत रबि करन दिसि लखि उर तापजुआन।
कामिनि अरु चिर दिवस-श्री ग्रहण कियो बहु मान ॥

यहाँ सूर्य और दिशा के वर्णन मात्र से नायकत्व और नायिकात्व (पुंल्लिगता और स्त्रीलिंगता) प्रगट ही होजाती है, फिर अप्रस्तुत का नायकत्व प्रगट करने के लिये 'कामिनी' शब्द का कथन नितान्त निष्प्रयोजनीय है।

४—(अन्योक्ति का दोष)

इस अलंकार में भी समान विशेषणों से ही प्रस्तुत प्रगट हो जाता है। उसके लिये कोई बाचक शब्द लाना 'पुनरुक्ति' दोष है